श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीकृष्णभजनामृतम्

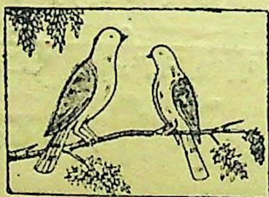
श्रील नरहरिसरकार ठक्कुर प्रणीतम्

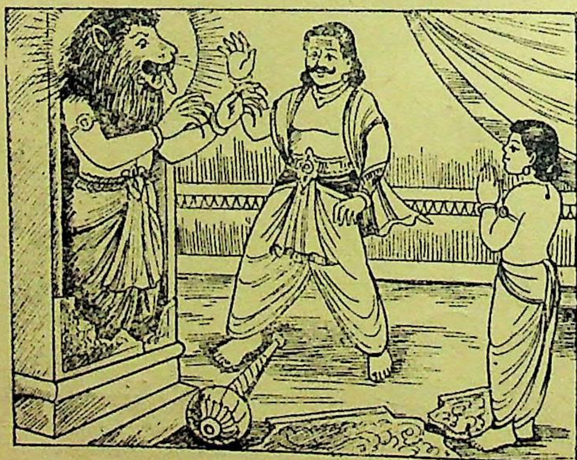
श्रील श्रीनिवासाचार्यप्रभु रचितम्

चतुःश्लोकीभाष्यम्

श्रीहरिदासशास्त्री







श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीनरहरिसरकार ठक्कुर प्रणीतम्

श्रीकृष्णभजनामृतम्

चतुःश्लोकीभाष्यम्

श्रीनिवासाचार्यप्रभु रचितम्

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य्य,
काव्यव्याकरणसांख्यमीमांसा वेदान्ततर्कतर्कतर्क
वैष्णवदर्शनतीर्थाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा
सम्पादितम् ।

प्रकाशक :—

श्रीहरिदास शास्त्री

चैतन्यसंस्कृति सेवासंस्था

श्रीहरिदास निवास, कालीदह,

पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा (उ० प्र०)

पिन—२८११२१

प्रकाशनतिथि—१।६।८४

द्वितीय-संस्करण—१०००

प्रकाशन सहायता—५.००

मुद्रक :—
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह, पो० वृन्दावन ।
जिला-मथुरा (उत्तर प्रदेश)
पिन—२८११२१

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

—※※—

अवतरणिका

—※—

आद्य महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यानुचरअखण्डकीर्त्तिश्रीखण्ड वास्तव्य श्रीनरहरिसरकारठाकुर रचित श्रीकृष्णभजनामृत नामक ग्रन्थसज्जन वृन्द समक्ष में उपस्थापित है, इसमें ग्रन्थकार की उक्तिके अनुसार श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु की लीला सङ्गोपन के अनन्तर भक्तितत्त्व ह्रास होने की कथा सोचते हुये निद्रित होनेपर स्वप्न में श्रीगौरचन्द्र दर्शन देकर पूर्वपक्ष एवं सिद्धान्तपक्ष के अवलम्बन से एक ग्रन्थ विरचन करने के लिए इङ्गित किए थे, इसके फलस्वरूप श्रीकृष्ण भजनामृत ग्रन्थका निर्माण हुआ। पूर्वपक्ष,—(१) वैष्णवों में तारतम्य कैसे सम्भव ? (२) दीक्षागुरु एव शिक्षागुरुके प्रति किस प्रकार व्यवहार उचित है ? (३) श्रीबलदेव,-स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के अंश, किम्वा अर्द्धविग्रह ? (४) गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को किस प्रकार से जानना होगा ? अन्यान्य देवगण के तत्त्व क्या है ? (५) श्रीहरि देहस्थिता लक्ष्मी के प्रति भगवदङ्ग तुल्य वैष्णवगण कैसा व्यवहार करेंगे ? उनके मध्यमें आद्याशक्ति कौन है ? रुक्मिणी जानकी, श्रीराधा प्रभृति के प्रति किस प्रकार व्यवहार करना कर्त्तव्य है ?

सिद्धान्त—(१) तत्त्वतः वैष्णवगण समान हैं, शास्त्रीय बलाबल ज्ञानशून्य स्वल्प बुद्धि, धनी विषयी, जनगण उनके प्रति समबुद्धि करेंगे, किन्तु जो लोक व्यवहार एवं परमार्थ दर्शन श्रवण प्रभृति ज्ञानादि में विशेष अभिज्ञ हैं एवं स्वल्प बहुबल इत्यादि विचार में निपुण हैं, वेसब वैष्णव में सत्यधर्म आचरण प्रभृति का परिमाण को जान कर ही वैष्णवों में तारतम्य करें एवं योग्यताके अनुसार व्यवहार भी करें। वैष्णव की निन्दा, अवहेला सर्वथा त्याज्य है, जोलोक अतत्त्वज्ञ हैं, वेसब समव्यवहार करेंगे।

(२) सकल वैष्णव ही गुरु हैं, उनमें दीक्षागुरु एवं शिक्षागुरु का ही गौरवाधिक्य है एवं आज्ञापालन सेवा उन दोनों की ही कर्त्तव्य है। गुरु विज्ञ न होनेपर महद् विज्ञवैष्णव के निकटसे उपदेश ग्रहण करना कर्त्तव्य है। वैष्णवगण गुरुवत् पूज्य होने परभी कायवाक्य मनसे श्रीगुरु की ही सेवा करना एकान्त कर्त्तव्य है। गुरुअसङ्गत कार्य करने पर उनको निर्जन में दण्डदेना उचित है एवं चरित्रहीन होनेपर परित्याग करना कर्त्तव्य है।

(३) बलदेव—स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका अंश है, उनका देह भागहोकर, सर्वशक्तिमान् स्वयं ईश्वर होकरभी अनुज लक्ष्मण अग्रज बलराम, अनन्त होकर भक्तभाव से श्रीकृष्णकी सेवामें रत होते हैं। अतएव श्रीकृष्ण स्वयं ही बलदेव होनेपरभी शरीर से पृथग्भाव अङ्गीकार किए हैं।

(४) ईश्वरकी सृष्टि करने की इच्छाशक्ति से प्रादुर्भूता आद्याशक्ति सत्त्व, रजः, तमोगुण द्वारा विभावितकर यथाक्रमसे विष्णु ब्रह्मा शिव को सृजन करती है, जागतिक समस्त क्रियामें इन तीनों का अधिकार है। सूर्य चन्द्रादि देवगणको, मनु, मन्वन्तराधिपतिगणको निज वशमें रखकर लीलाविनोदी श्रीकृष्ण विहार करते हैं, अतएव ये पुरुषगण सबही उनके अंश कला हैं।

(५) लक्ष्मीके विषय में-वैष्णवगण, उनके आनुगत्य से श्रीहरि के प्रति प्रेम भिक्षुक होकर व्यवहार करेंगे। सम्पत्ति रूपा लक्ष्मी भी श्रीविष्णुकी गृह-संश्रया गृहिनी वैष्णवी—इस बुद्धिसे सबके सम्मान पात्र हैं।

रुक्मिणी एवं जानकी श्रीराधाके अनुगता है। श्रीराधाही सर्व वनिता के प्रकाश स्थल हैं, सम्पत्ति रूपा लक्ष्मी श्रीराधाङ्ग से पृथक् होनेके कारण श्रीराधाके विलास महत्त्व नहीं जानती है, ब्रह्मादि भी नहीं जानते हैं, उनकी वनितागण भी श्रीराधातत्त्व नहीं जानतीं हैं, किन्तु श्रीकृष्णविषयक विशुद्ध अनुराग आस्वादनकी इच्छासे ही श्रीराधासङ्ग की वाञ्छा करती हैं। श्रीराधागोविन्द की लीलाही

परमप्रेम रसानन्दमय हैं, महिषीगण,-तत्त्ववित् श्रीउद्धव की भी गोपी अनुराग दर्शन से आत्मविस्मृति हुई हैं, ब्रह्मा एवं नारद का गोपीभाव का अनुभव हुआ है।

श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु निज प्रेमद्वारा विषयी, मद्यप.अध्यात्मवादि प्रभृतियों का महारसास्वादन. प्रेम धारासे सबके चित्तशोधन एवं पुरुष के मध्यमें भी प्रकृति भाव समर्पण इत्यादि लीलाविनोद करने परभी किन्तु श्रीराधा रहस्य को परम गोप्य रखे थे। श्रीगदाधर ही श्रीराधा-सकल वनिता प्रधानभूत हैं,श्रीगौराङ्ग-गदाधरके परस्पर निर्गुण (चिदानन्दमय भाव) देह में मिलन ही प्रगाढ़, सत्य, भक्तगण जीवातु हैं।

प्रसङ्गत: श्रीचैतन्य नित्यानन्द आत्मसङ्गोपन करनेपर देव निग्रह एवं राजनिग्रह होगा। उत्तम वैष्णवगणभी निज निज धाम गमन करेंगे। जो सब वैष्णव पृथिवीमें प्रकट रहेंगे वेसब निज निज प्रभाव सङ्गोपन एवं अनन्तर में श्रीकृष्णप्रेम निरोध करेंगे। हरि-कीर्त्तन, सत्सङ्ग एवं ईश्वर सेवा क्रमश: मन्दीभूत होंगे।

प्राकृत जगत् में कर्म सापेक्ष सकामी एवं साधुजगत् में कृष्ण सापेक्ष(कृष्णभक्ति प्रारायण)जनही महान् हैं। पक्व एवं अपक्व योगी का भेद-पक्वयोगी का कदाचित् पदस्खलन होने परभी श्रीकृष्ण एवं भक्तकी कृपासे निष्कृति होती है, अपक्वयोगी दिनदिन भक्ति ह्रास होकर विषयरसलिप्सु होता है, प्राकृत रसमें आसक्त होता है,वाहर वेषभूषाद्वारा भूषित होने परभी सत्सङ्ग हीन श्रीकृष्णप्रीति विहीन व्यक्तिगणकी अभिज्ञ व्यक्तिगण निन्दा करेंगे, इस प्रकार भक्त.भेद की परीक्षा अत्यावश्यक हैं, उपसहारमें सर्वत्र प्रेममय व्यवहार कर प्रेमास्त्र द्वारा असुखीको सुखी बनाने का उपदेश एवं प्रार्थना आपने किया है।

वैष्णवे प्रीतिरास्तां मे प्रीतिरास्तां प्रभोर्गुणे ।
सेवायां प्रीतिरास्तां मे प्रीतिरासक्तिश्च कीर्त्तने ।।
आश्रिते प्रीतिरास्तां मे प्रीतिश्च भजनोन्मुखे ।
आत्मनि प्रीतिरास्तां मे कृष्णेभक्तिर्यथाभवेत् ।।

एतद्व्यतीत ग्रन्थकार द्वारा रचित (१) भक्तिचन्द्रिका पटल (२) श्रीचैतन्यसहस्र नाम, (३) श्रीशचीनन्दनाष्टक, (४) श्रीराधाष्टक प्रभृति ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। १४०१ से १५१४ शकाब्द आपका अवस्थान समय है।



हरिदासशास्त्री

* श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ विजयेताम् *

* श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः *

****

श्रीश्रीनरहरि–सरकार–ठक्कुरविरचितम्

श्रीश्रीकृष्णभजनामृतम्

१। वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यं प्राण सर्वस्वमीश्वरम्।
सर्वावतार कारुण्यनिःसीमकरणं प्रभुम्॥

२। शुकदेवं नमस्यामि भक्तिशाखि महाफलम्।
विहरन्तं कृष्णप्रेम रससिन्धौ जड़ं मुनिन्॥

३। कृष्णचैतन्यचन्द्रेण नित्यानन्देन संहृते।
अवतारे कलावस्मिन् वैष्णवाः सर्व एव हि॥

४। भविष्यन्ति सदोद्विग्नाः काले काले दिने दिने।
प्रायः सन्दिग्धहृदया उत्तमेतर मध्यमाः॥

प्रणिपत्य पदद्वन्द्व श्रीगौराङ्गमहाप्रभोः।
कथयिष्यामि निर्दोष श्रीकृष्ण भजनामृतम्।

निखिल श्रीभगवत् अवतारों के कारुण्य से निःसीम करुण, प्राण सर्वस्व ईश्वर प्रभुश्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ। १

श्रीशुकदेव को मैं प्रणाम करता हूँ जो भक्तिरूप कल्प वृक्ष के महामूल स्वरूप हैं, एवं श्रीकृष्णप्रेमरससिन्धु में विहरणविभोर मुनि हैं।२

श्रीकृष्ण चैतन्य चन्द्र एवं श्रीनित्यानन्द चन्द्र अप्रकट होने पर कलियुग में सकल वैष्णवगण प्रतिदिन सदा उद्विग्न होते रहेंगे और उत्तम मध्यम कनिष्ठ अधिकारी के विषय में प्राय सन्दिग्ध हृदय होकर रहेंगे। ३-४

५। पूर्वपक्षसहस्राणि करिष्यन्ति जने जने।
तेषां प्रभो र्ध्यानबलात् सिद्धान्तानतिनिर्मलाम् ॥
६। प्रवक्ष्यामि समासेन व्यासेन च महात्मनाम्।
प्रीत्यै परम हंसानां सर्वशास्त्र विचारितान् ॥
७। दासो नरहरिर्मूर्खः सिद्धान्तानतिदुष्करान्।
कथं कुर्य्यादिति मृषा वितर्कं माकृथा बुधः ॥
८। निर्गुणः सगुणो वापि मूर्खः पण्डित एव वा।
कृष्णभक्तिविचारेऽस्मिन् कः समर्थोऽस्ति भूतले ॥
९। अकस्मान्निद्रितः स्वप्ने कथयामि कथामिमाम्।
पूर्वपक्षांश्च सिद्धान्तां स्तत्रैव विमृशाम्यहम् ॥
१०। हृदि प्रसन्नता जाता सुधासिन्धुमिवाश्रितः।
समयेऽस्मिन् गौरचन्द्रः प्रादुरासीत् स्मिताननः ॥

प्रतिव्यक्ति उक्त विषयों में पूर्वपक्ष जिज्ञासाभी करते रहेंगे उन सब की जिज्ञासा के उत्तर में मैं श्रीप्रभुकी कृपासे परम हंस महात्मा गण की सन्तुष्टि के लिए अतिनिर्मल समस्त शास्त्रों का विचार सिद्धान्त को कहूँगा ॥५-६

नरहरि दास अति अनिपूण है, सिद्धान्त भी अतिदुष्कर है, वह कैसे इसको लिखेगा बुधगण ऐसा व्यर्थवितर्क न करें ॥७॥

निर्गुण सगुण मूर्ख और पण्डित श्रीकृष्णभक्ति विचार में इस भूतल में कौन समर्थ हैं ॥८॥

एकदिन स्वप्न में इस विषय में पूर्वपक्ष और सिद्धान्त पक्षों का मैं विचार कर रहाथा उस समय हृदय में बड़ी प्रसन्नता हुई ॥९॥

उस समय स्मितानन श्रीगौरचन्द्र आविर्भूत हुए ॥१०॥

११ । सार्वभौम करालम्बी साधु साध्विति सम्मुखे ।
एवमेव यद् ब्रवीषि जागृहीति ब्रुवन् ययौ ॥
१२ । तत उत्थाय शय्याया ध्यात्वा तच्चरणाम्बुजम् ।
आत्मानं दुर्गतं शोच्यं त्यक्त-तच्चरणाम्बुजम् ॥
१३ । मेने धन्य मिवात्मानं प्रभोः सकरुणंवचः ।
स्मृत्वा च महदैश्वर्य्यं न जाने किमभूत्तदा ॥
१४ । तेनैव कारुण्यबलेन चित्ते बभुव कर्त्तुं रचनंसुबुद्धिः ।
१५।ये ये महान्तः किलहंसभूता,जगत्पवित्रीकरणार्थमागताः
ते ते तदुच्छिष्ट निषेविणो मे कर्त्तुं विशुद्धं रचनं प्रवीणाः ॥
प्रथमं भागवता स्तान् पूर्वपक्षान् समाकर्णयन्तु सुधियो
निर्मत्सराः । श्रीकृष्ण नाम बलात् कलौ सर्व एव वैष्णवाः

श्रीवासुदेव सार्वभौम के हाथ को पकड़कर सम्मुख में खड़े हुये और जो कुछ विचार कररहे हो वह साधु साधु है ऐसा कहते कहते चले गये ॥११॥

अनन्तर मैं उठकर उन के पादपद्म का ध्यान करने लगा बिछुड़ जाने के कारण मन में बड़ा निर्वेद हुआ ॥१२॥

श्रीप्रभु की सकरुण वाणी का स्मरण कर अपने को धन्य माना उस समय कैसा महत् ऐश्वर्य्य का आविर्भाव हुआ उसको में कह नहीं सकता ॥१३॥

उस कारुण्य के बलसे रचना करने में चित्तमें सुबुद्धि हुई विचार कर कोमल गद्यसे मूर्ख होकर भी भजनामृत का निर्माण किया ॥१४

जो जो महान् पुरुषगण हंस स्वरूप प्राप्त होकर जगत् पवित्र करने के लिए विश्व में आयेथे उन उन प्रवीण व्यक्तियों के उच्छिष्ट निषेवण से ही मेरी रचना विशुद्धा हुई ॥१५॥

समाः कृष्णोपमा इतिस्मृतिः प्रसिद्धैव । अत्रन्यूनातिरिक्तता क्वापि क्वापिदृश्यते ? किमेतत् ? अन्यच्च,–वैष्णवानां मध्ये तु दीक्षागुरवः सन्ति, तथा शिक्षा गुरवश्च सन्ति, अत्र कथं व्यवहर्त्तव्यम् ? अन्यच्च,–श्रीकृष्णः स्वयं भगवानेव, तत्र बलभद्रस्तदंशस्तदर्ध विग्रहो वा स एव वा किंज्ञातव्यः ? तथाजो भवश्च विष्णुश्च तद् गुण प्रभवास्त एव किं ज्ञातव्यः ? इतर एव वा ? तथालक्ष्मी स्तद्देहस्थिता तत्तु-सैव वैष्णवी चेश्वरी, अङ्ग तुल्यानां वैष्णवानां कथमा-चरणीया ? तथाद्याशक्तिः का ? प्रधान प्रकृतिरेव साकि मिव ज्ञातव्या ? रुक्मिणी कृष्णवनिता जानकी च लक्ष्मी

विमत्सर वुद्धिमान् भागवतगण प्रथम विचार्य्य विषयों के पूर्व पक्ष समूह को श्रवण करें श्रीकृष्णनाम के बल से कलियुग में सकल वैष्णव ही समान एवं श्रीकृष्ण सदृश हैं, यह कथा स्मृति शास्त्र प्रसिद्ध है ? इसविषय में न्यून अतिरिक्तता छोटा बड़ा किसी स्थान पर देखते हैं, इसका अभिप्राय क्या है और भी वैष्णवों के मध्य में दीक्षागुरुगण हैं? शिक्षागुरुगण भी हैं । यहांपर व्यवहार कैसा करनाउचित होगा? और भी श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् ही हैं ? बलदेव उनका अंश अथवा अर्द्ध विग्रह हैं, ये सब कैसे जानेंगे ? उस प्रकार ब्रह्म शिव विष्णु गुण से उत्पन्न हुये हैं, यह भी कैसे मानेंगे ? अथवा अन्य प्रकार ही हैं ? वहभी कैसे जानेंगे । उस प्रकार लक्ष्मी श्रीनारायण देहस्थिता, उन की तुल्या वैष्णवी ईश्वरी हैं' अङ्गतुल्यवैष्णवोंके लिए कैसा आचरण विहित होगा ? उस प्रकार आद्याशक्ति कौन है ? प्रधान प्रकृति ही है, वह कैसे जानेंगे ? रुक्मिणी कृष्ण वनिता है, जानकी भी लक्ष्मी रूपाहैं, उन सबके प्रति आचरण कैसा करणा चाहिये उसप्रकार श्रीमति

रूपा कथं व्यवहर्त्तव्या? तथा श्रीमती राधा वृन्दावन विलासिनी वृन्दावन भूषणंवसकल विनोद कलवती एतासां मध्ये वीजभूता ? कस्यां कृष्णस्य सौभाग्यं महत् ? अत्र विचारः कोऽस्ति ?

इदानीं पूर्वपक्षाणां प्रथमतः क्रमेण सिद्धान्तानाकर्णयन्तु । —वैष्णवाः सर्वे समा इति सत्यम् ! किन्तु ये बलाबलं न जानन्ति, विषयिणः स्वल्पबुद्धयः केवलं भिक्षुकादपि क्रूर वेशादपि बिभ्यति, ते कथं तेजसो बलाबलं स्वल्पाग्नि-महाग्नि-विशेष-भावं ज्ञास्यन्ति ? ते सम-व्यवहारमेव करिष्यन्ति, विशेषविचारबोधाज्ञत्वात् किं मरिष्यन्ति ? तेषां समतैव पथ्यम् ।

राधा वृन्दावन विलासिनी वृन्दावन भूषणा सकल विनोद कलावती हैं, इन सबों के मध्यमें मूलवीज स्वरूपा कौन है ? किस में कृष्णचन्द्र का महत्त्व सौभाग्य स्थापित है ? उक्त विषयों का विचार क्या है ?

सम्प्रति पूर्वपक्ष समूह के क्रमपूर्वक सिद्धान्त सकल का श्रवण प्रथम करें । वैष्णवगण सबही समान हैं, यह कथन यथार्थ हैं किन्तु जो लोक बलाबल उत्कृष्ट,अपकृष्ट बड़ा छोटा,नहीं जानते हैं जैसे धनी वर्ग, साधारण जन अपढ़जन, अल्पबुद्धिवाले अज्ञजन, जो लोक केवल भिख मांगने का वेषको देखकरही डरते हैं, बाबाजी सन्न्यासी विरक्त वेशधारी व्यक्तिसे भी डरते हैं, क्रुर वेशसे भी जैसे रक्तवस्त्र, कृष्णवस्त्र, जटा प्रभृति सौम्य वेशसे पृथक होकर कुछ भयङ्कर दिखाई देत हैं, डरते हैं वे लोक हृदय से कमजोर होते हैं वे लोक कैसे तेज का बलाबल,-जैसे स्वल्प अग्नि-महा अग्नि इस प्रकार विशेष भावको

येतु वैष्णवा व्यवहार-परमार्थिनः श्रवणाद् दर्शाज् ज्ञानाद्विशेष बुद्धयः स्वल्पबल-बहुबलं विचारण धीरा केषां देहे कृष्णस्य कियत्तेजः स्वल्पं बलं बहुबलं वा सर्वं जानन्ति ते विशेष बुद्धयाव्यवहारं करिष्यन्ति । बलाबलं ज्ञात्वा यदि न कुर्वन्ति, तर्हि दोष भागिनो भवन्ति । तस्मात् स्वल्पबले बहुबले उपसन्ने आदौ महतां पूजां कुर्वन्ति, पश्चात् साधारण बलानाम् ।

एवं परोक्षेऽपि यथा बलवताम् नतथा स्वल्प बलानाम् ।

कैसे जान सकेंगे ? वे लोक समव्यवहार ही करते हैं, विशेष विचार कर वस्तु समझने की उन सब में बुद्धि ही नहीं है, वे लोक क्या करेंगे ? उन लोकों के लिए तो समता ही पथ्य है ।

जोसब वैष्णव व्यवहारिक अथवा पारमार्थिक पथ के पथिक हैं, वे सब शास्त्रोक्त साधुलक्षण श्रवण से तदनुरूप व्यक्तिमें लक्षण दर्शन से ज्ञानवान् होकर उक्त विषय में विशेष अभिज्ञता प्राप्त किये हैं, स्वल्प बल बहु बल विचार में भी प्रवीण हैं, किस के देह में श्रीकृष्ण का प्रभाव तेज कितना है ? स्वल्पबल अथवा बहुबल सब कुछ जानते हैं, वे सब विशेष बुद्धिसे पृथक् पृथक व्यवहार करते हैं, बलाबल को जान कर भी तदनुरूप आचरण नहीं करेंगे तो वे दोष भागी बनेंगे । अतएव स्वल्पबल एवं बहुबल का आगमन होनेपर प्रथम महत् की पूजा वे करते हैं पश्चात् साधारण बलशाली व्यक्तिकी पूजा करते हैं ।

प्रत्यक्षमें जैसे महत् का सम्मान प्रथम करने के लिए कहा गया है, वैसे ही परोक्ष में भी श्रेष्ठव्यक्ति की पूजा प्रथम कर पश्चात् कनिष्ठ की पूजा करते हैं ।

जिस प्रकार बड़वाग्नि प्रज्वलित होनेपर प्रथम कोई भी व्यक्ति

नहि यथा वाड़वाग्नौ ज्वलति प्रदीपाग्निं ज्ञानवन्त आदौ निर्वापयन्ति, वाड़वाग्नौ निर्वापिते प्रदीपाग्निं सुखेन निर्वापयन्ति। यदि वा महाबलानां महातेजसां पूजा सन्तर्पणं दृष्ट्वा स्वल्पतेजसः क्रुध्यन्तितर्हि निर्बुद्धयो महतां तेजसैव भग्न तेजसोभविष्यन्ति,कथंपूजा कारिणो निग्रहं करिष्यन्ति ! एतत् सर्वं व्यवसायिनो दीर्घ श्रुतयो वैष्णवा व्यवहार परमार्थिनश्च ये जानन्ति तेज्ञात्वा त्वकरणे नश्यन्ति बलाबलविचारे जीवन्ति सुमेरोराश्रितानां किमन्ये करिष्यन्ति, पूजाश्च साधु सम्मानं सेवनञ्च करिष्यन्त्येव।

१६। न निन्दा वैष्णवे कार्य्या नावहेला प्रमादतः।
न दुःखं मरणं वापि स्याद्यदि वैष्णव कारणात् ॥

प्रदीपाग्निको बुझाता नहीं हैं, बड़वाग्नि शान्त हो जानेके बाद सुख पूर्वक प्रदीप को बुझाता है। महाबल सम्पन्न महातेज सम्पन्न व्यक्ति की पूजा सन्तर्पण को देखकर स्वल्प बलवाले क्रुद्ध होंगे तो निर्बुद्धि व्यक्ति महत्के प्रभाव से ही नष्ट हो जायेंगे। पूजाकारी व्यक्ति को उन सबको निग्रह करने के लिए प्रयत्न कैसे करना पड़ेगा? ये सब व्यवहार उनलोकों के लिए करना आवश्यक है,जो परिनिष्ठित हैं,एवं बहुश्रुत, व्यवहार परमार्थ की अभिलाषी वैष्णव हैं। अन्यथा वे सब नाश प्राप्त हो जायेंगे। जो व्यक्ति सुमेरु पर्वतमें चढ़ चूका है अपर व्यक्ति उसका क्या कर सकता है? महत् की अग्र पूजा सम्मान सेवा वे सब करेंगे ही।

प्रमाद से भी कभी वैष्णव की निन्दा एवं अवहेला नकरे,वैष्णव के लिए यदि दुःख एवं मरण भी हो जाय तथापि उक्त आचरण नकरे।

१७ । न दोषा वैष्णवे दृश्याः कर्माचारः विलोकनात् ।
कर्माचार विशुद्धा वा के सन्ति कलिमर्दिताः ।।

यतो वैष्णवाङ्गे कृष्णाग्निर्वर्त्तते, श्रीकृष्ण ध्यानबलात् पातकानि पतितुं न समर्थानि, पतितान्यपि कृष्णाग्नौ दग्धानीति। अजानतान्तु सकल गङ्गायामेकैवोर्म्मिर्मारति सबलाबल वैष्णवे समतैव पूजेत्युपसंहारः ।।

सकल वैष्णवा एव गुरवः । तत्रदीक्षा गुरवः शिक्षा-गुरवश्च विशेषतः सन्ति तयोरेव कार्यम् । यदि तावल्पबलौ तथाप्यन्य महतांमुखाच्छिक्षा विशेषं ज्ञात्वापि गुरवे देयम्, तदेव गुरुषु पठनीयम् नतु गुरो हेलाकर्त्तव्या, यथास्नेहभाजन पुत्रोऽर्थोपार्ज्जनं पित्रे दत्त्वा प्रार्थ्य च स्वयं भुङ्क्ते ।

कर्माचारको देखकर वैष्णव में दोष दर्शन करना उचित नहीं हैं, कलिकाल ग्रस्त व्यक्तियों में कौन व्यक्ति होगा ? जो कर्माचार से विशुद्ध हैं ।

कारण वैष्णव के अङ्ग में कृष्ण तेज अग्नि है, श्रीकृष्ण ध्यान के बलसे पातक समूह आनेमें समर्थ नहीं है, यदि आ भी जाते हैं तोकृष्ण अग्निसे ज्वल जायेंगे । अज्ञान के लिए गङ्गाका उर्म्मितरङ्ग, सब एक ही हैं, इस प्रकार बलाबल विचार में समता से पूजा करना कर्त्तव्य है इस प्रकार प्रकरण का उपसंहार हुआ ।

सकल वैष्णव ही गुरु हैं, उनमें दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु की विशेषताहै, इन दोनों के महत्त्व को जानकर बलाबल विचार कर ही आदर पूजादि का आचरण करना कर्त्तव्य है, आज्ञा पालन किन्तु शिक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु की ही करना एकान्त आवश्यक है ।

यदि स्वयमानीय खादति,ततः कुपुत्रः पापी स्यात् । तस्मात् सर्वत्र वैष्णवानां गुरोः समाधिकारापूजा कार्य्या ।तथापि काय मनोवाक्यै र्गुरोरेव सेवनं कुर्य्यात् । कार्यकाले परैर्गुरोरव हेलायां गुरुरेव गुरुस्तत पक्षएव ग्राह्य; ॥

पश्य,पश्य,यथा पिता गुरुस्तथा तस्य भ्राताग्रजोऽनुजः, पितु रधिक पूज्यो वा पितुश्चेदात्मीय एव वा, तथापि पितुः पितागुरुरपि गुरुः, तस्य पूजा द्विगुणितेति शैली लोक प्रसिद्धा, अत्र यदि पितरं कार्य्यकाले ऐते वृथैव गर्हयन्ति, तर्हि पितैव गुरुः, पितुःपक्ष एव आश्रयणीय स्तद्बलेनैव जीवा

यदि दीक्षा गुरु एवं शिक्षा गुरु स्वल्पबलसम्पन्न हो तो, अपर महत् के मुखसे शिक्षा ग्रहणकर गुरुको प्रदान कर,अनन्तर वह शिक्षा गुरु से हीग्रहण करे गुरुके प्रति कदापि अवहेला न करे ।

जैसे स्नेह भाजन पुत्र अर्थोपार्ज्जन करके पिता को देता है एवं उनमें मांगकर व्यवहार निष्पन्न करता है, स्वयं लाकर स्वयं ही भोग करता है तो कुपुत्र पापी होता है, अतएव सर्वत्र गुरु एवं वैष्णवों के प्रति समबुद्धि से पूजादि करना कर्त्तव्यहै, तथापि कायमनो वाक्य द्वारा गुरुकी ही सेवा करना एकान्त कर्त्तव्य है किसी समय अन्य के द्वारा गुरुकी अवहेला होने पर गुरुका पक्षही ग्रहण करना उचित है।

देखो देखो जिस प्रकार पिता गुरु हैं, उनके भाई बड़े-छोटे हैं, पिता के अधिक पूज्य पिता के यदि आत्मीय हो तो तथापि पिता के पिता द्विगुण गुरु होते हैं यह लोक में प्रसिद्ध हैं । यहाँपर विशेष बात है कि-किसी समय इनमें से कोईभी व्यक्ति किसी समय पिता को व्यर्थ ही कष्ट देता है तो उस समय पिता ही गुरु होंगे, पिता का पक्ष ग्रहण करना ही उचित होगा, उनका अवलम्बन कर ही जीवित रहना

लम्बनं कार्य्यम्। पिता गुरु र्वा पति र्वा निर्गुणोऽपि पूज्य एव। एतेषां बलान्महद्भि र्ज्ञानिभि र्वा सह विवदितव्यम् के नाम जनाः पितुः कलङ्के जीवन्ति? बलाबलं खलुजीवनम् सर्वे तदनुमतमेव गुरुमुखाद् वा स्वबुद्ध्या वा व्यवहरन्तीतिक्रमः, आत्मानं तद्दास्ये तदा गणयन्ति। एष एव परोधर्मः।

किन्तु यदि गुरुरसमञ्जसं करोति, तर्हि युक्ति सिद्धैः सिद्धान्तै स्तस्य रहसि दण्डः करणीयःनतु त्याज्यः। गुरु र्दण्डच्य हति चेन्न, तत्रापि।

१८। गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्याकार्य्यमजानतः उत्पथ-प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते इति (न्याय्योदण्डोविधीयते इति पठान्तरम्)।

उचित है, पिता, गुरु, पति, निर्गुण होने परभी गुरुही हैं, उक्त व्यक्तियों की सहायतासे बलवान्-ज्ञानी के साथ विवाद करना उचित है। कौन ऐसा पुत्र होगा जो पिता के कलङ्कसे जीवित रहता है? बलाबल विचार ही जीवन है। सबलोक बलाबलके द्वारा गुरुमुख से सुनकर,अपनी बुद्धिसे व्यवहार करते हैं यह ही क्रम हैं। अपनेको तव ही श्रीगुरुदेवके दास्यमें नियोग करेगा, यह ही परम धर्म है।

किन्तु गुरु यदि कुछ असमञ्जस कार्य करे तो युक्तियुक्त सिद्धान्त द्वारा एकान्त में गुरु को दण्ड प्रदान करना एकान्त कर्त्तव्य है, त्याग न करे। गुरु का भी दण्ड देना? क्या कहते हैं,ऐसा कहा नहीं जा सकता है, गुरु के लिए भी दण्ड दान का विधान है, जो गुरु विषयासक्त हैं, अधिकारोचित कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को नहीं जानता है,

अनेन सर्वं सुशोभनमिति। स्वभावत एव वैष्णवानां कृष्णाश्रय एव मूलम्। तद्गुणगान-यशोवर्णन-विलास विनोद-प्रख्यापनमेवजीवनम्। सर्वे तदर्थमेव गुरुमुखाद् वाशृण्वन्ति स्व बुद्धया वा व्यवहरन्तीति क्रमः। तत्र गुरु र्यदि विसदृशकारी, ईश्वरेभ्रान्तः, कृष्ण-यशोविमुखस्तद्विलास विनोदं नाङ्गीकरोति स्वयं वा दुरभिमानी, लोकः स्वस्तवैः कृष्णमनुकरोति, तर्हि त्याज्य एव। कथमेव गुरु स्त्याज्य इति चेन्न, कृष्णभावलोभात् कृष्णप्राप्तये गुरुराश्रयण कृतम् तदनन्तरं यदि तस्मिन् गुरौ आसुरभावस्तर्हि किं कर्त्तव्यम्? असुरगुरुं त्यक्त्वा श्रीकृष्णभक्तिमन्तं गुरुमन्यं भजेत्॥

और उत्पथगामी है तो दण्ड देना भी उचित है, और परित्याग करना भी कर्त्तव्य है।।१८।।

वैष्णवों के लिए श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करना मूल धर्म है, उन के गुणगान यश वर्णन विलास विनोद वर्णन ही जीवन है, सबलोक उनके लिए गुरुकरण करते हैं. और गुरुमुखसे सुनते हैं, अपनी बुद्धिसे उसके बाद अनुशीलन करते हैं, इसमे गुरु यदि इसके विपरीत है, ईश्वर विषय में भ्रान्त है, कृष्ण यशो विमुख है, उनके विलास विनोद स्वीकार नहींकरता है, स्वय दुरभिमानी है लोक प्रसिद्धि लोकसे स्तुति ग्रहण द्वारा अपने को कृष्ण बनाता है तो सर्वथाही त्यागकरदेना उचित होगा। गुरुत्याग कैसे हो सकते हैं, ऐसा मत कहो? कृष्णभावप्राप्ति के लोभ से गुरुपदाश्रय किया, तत् पश्चात् गुरुमें यदि आसुरिक भाव ही हो जाय तो करना ही क्या है, असुर गुरु को छोड़कर श्रीकृष्ण भक्तिमान अपर गुरु को वरण कर उनका भजन करे इस प्रकार कृष्णभक्त गुरु के बल से असुर गुरु के बल को नष्ट कर देना उचित है, यह ही

अस्य कृष्णबलादसुरस्य गुरोर्बलं मर्दनीयमिति वैष्णव-भजन विचार; । एवं तु दृष्टा बहव: श्रीकृष्णचैतन्यावतारे इति गुरुनिरूपणसिद्धान्ता: ॥

अथ श्रीकृष्णो भगवानेव सकलशक्ति गुणत्रयं सर्व वैभवं विलासविनोदं सकलभावकलाचातुरी माधुर्य्यादि यदन्यद् वागुणाविशेषं सर्वाण्युदरे निजदेहे निधाय निजप्रभुत्वेनसकलान्वैकुण्ठाद्यवतारानेकत्रीकृत्यसुखंपुरातनवदास्ते, सकलसुखविलास–विनोदभावमय-विशुद्ध-विग्रहोऽप्येतैर्नाना गुणैश्चतुर्दशलोक पर्वत तरुलता संसारजालै र्वेष्टितो यन्त्रित इव प्रकाशं न लभेत । तत्र कदाचिद्यति तस्येच्छा प्रभवति,सएव काल इति श्रूयते। स तदैव सृष्टिमारभते र्तहि सर्वशक्तिमयी शक्तिराधा प्रादुर्भावं प्राप्य तदन्तिके तिष्ठति ।

वैष्णव भजन विचार हैं, श्रीकृष्णचैतन्य के अवतार में ऐसा जाज्वल्यमान दृष्टान्त अनेक हैं, इति गुरु निरूपण सिद्धान्त ॥

श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं सकल शक्तिगुणाश्रय सर्व वैभव विलास विनोद सकल भाव कला चातुरी माधुर्यादि इससे अन्य जो गुण विशेष है,समस्त को निज उदरमें निजदेहमें स्थापनकर स्वयं प्रभुस्वरूप सकल वैकुण्ठादि अवतारों को एकत्रकर पूर्ववत् सुख पूर्वक विराजते हैं ।

सकल सुख विलास विनोद भावमय विशुद्ध विग्रह होनेपर भी नाना गुणोंसे चतुर्दश लोक पर्वत तरुलता संसार जालसे वेष्टित यन्त्रित की भाँति प्रकाशको प्राप्त नहीं होते हैं कदाचित् यदि उनकी इच्छा होती हैं, तो उसको कालशब्दसे कहते हैं, वह उसीसमय सृष्टिका आरम्भ करदेता है, तब सर्वशक्तिमयी आद्याशक्ति आविर्भूत होकर उनके

तत ईश्वरेच्छायाःसा गुणत्रयं विभाव्यविष्णु-विरिञ्चि-शिवान् सृजति, अन्यच्च प्रकाशान्तरं सृष्टेःपुराणान्तरमतम्। ईश्वरेच्छाया आद्याशक्तिःप्रभवति। ततश्च द्वयोरन्योऽन्यावलोकनेन मन इति पुमानाविर्भवति। ततो मनसस्त्रयो जायन्ते। इत्येतेनाजादयो भगवतः पौत्राः अन्यत्र पुत्रा इति।

एवं प्रकारेण महामहेश्वर ईश्वरत्रयं निर्माय सकल वैभवं स्थाने स्थाने समर्प्य केवलो निर्गुणः क्रीड़ा विलास विनोदमयं विग्रहं चन्दन वृक्ष इव सर्पजालैः, सर्प इव सकलैरेतैर्व्यापारैर्विमोचकैर्विनिर्मुक्तो लोकनिस्तारकारकं

निकट में रहती है,अनन्तर ईश्वरेच्छा से आद्याशक्ति त्रिगुण को प्रकाश कर विष्णु विरिञ्चि शिव को सृजन करती है,इस विषय में जो प्रकारान्तर हैं,वह पुराणान्तर का मत है,ईश्वर की इच्छासे ही आद्यशक्ति सम्पन्न होकर रहती हैं,पश्चात् दोनों के परस्पर अवलोकन से मन अर्थात् पुरुषका आविर्भाव होता है,पश्चात् मनसे तीनों की उत्पत्ति होती है,इस प्रक्रियासे अजादि भगवान् के पौत्र हैं,अन्य प्रकारसे पुत्र हैं

इस प्रकार महामहेश्वर ईश्वर त्रय को निर्माणकर सकल वैभव स्थान स्थान पर बँट कर स्वयं केवल निर्गुण क्रीड़ा विलास विनोदमय विग्रह को सर्पजालसे आवृत चन्दनवृक्ष की भाँति, सकल व्यापारसे मुक्त सबके समान लोक निस्तार कारक-सुखमय-लीला-विलास स्वप्रभावशील को भक्त वात्सल्यके द्वारा प्रकटकर स्वयं विराजित होते हैं सर्वत्र ही विष्णु विरिञ्चि भव प्रभृतिको सूर्य, चन्द्र-मुनि-मनु मन्वन्तराधिपति आदि पुरुष प्रकृति को अपने वशमें रखकर प्रधान पुरुष स्वरूप लीलाविनोदी देवादिदेव स्वयं भगवान् सर्व प्रकार से जययुक्त होते हैं।

सुखमयं लीलाविलास स्वप्रभावशीलं वपन् भक्तवात्सल्येन स्वयं प्रभवति। सर्वत्र एव विष्णु-विरिञ्चि भवप्रभृतीन् सूर्य-चन्द्रमुनि-मनु—मन्वन्तराधिपादिपुरुषाननुकर दशान् कृत्वा एक एव प्रधानपुरुषः स्वयं भगवान् जयति लीला विलासविनोदकारी देवादिदेवः। स एक सत्यं सर्वान् स्व सुखे वहति। अथो ये ये पुरुषस्तएव सर्वेऽनुकरणाः सकलाः, प्रधानं कृष्ण एव। तस्माद् विष्णुरूपादय ईश्वरगुणैरुद्भूता ईश्वरा एव सर्वत एव वैभवादि संसार चक्रं निरूपयन्ति, पालयन्ति, संहरन्ति।

श्रीकृष्णचन्द्रस्तु उदासीनः, स्त्रीलम्पटः, स्वेच्छा विहार इतरैर्गुणै र्जगदलङ्करोति। तथापीङ्गितानुवर्त्तिनस्तस्माच्छ्री कृष्ण एव निर्गुण, प्रभुरनिर्वचनीयैरन्यैः किमिव महनीयै-र्गुणैरेतै रजादिभिरप्यविदितैर्गुणवान् लीलातनुःसमुज्जृम्भते।

वह एक ही सत्य स्वरूप हैं और एकवही सबको सुख पूर्वक निजनिज अधिकार में स्थापन करते हैं। अतएव जो जो पुरुष हैं वे सबही उनके अंशकला हैं, प्रधान कृष्ण ही हैं। इसलिए विष्णुप्रभृति रूप ईश्वर गुणोंसे उद्भूत होकर सर्वतोभावेन वैभवादि संसारको उत्पन्न करते हैं पालन करते हैं तथा संहार भी करते हैं।

किन्तु श्रीकृष्ण उदासीन, स्त्रीलम्पट, स्वेच्छा विहार पटु हैं, जनकल्याणकर गुणोंसे जगत् को अलङ्कृत करते रहते हैं। ऐसे होने परभी अधिकारी ईश्वर वर्ग उनके इङ्गितसे ही चलते हैं, अतएव श्रीकृष्ण ही निर्गुण प्रभु हैं, अनिर्वचनीय ब्रह्मादि अविदित महनीय गुणों से परिपूर्ण गुणवान् श्रीकृष्णलीलातनु को प्रकट करते हैं।

बलदेवस्तु तदंशएव, तद्देह भागोऽपि सर्वशक्तिमानपि ईश्वरः स्वयं प्रभुरपि कदाचिदनुजो लक्ष्मणः कदाचिदग्रजो बलराम इति कृष्णस्यैवानन्तगुणभागं वर्णयितुं भक्तभावमेव भजेत । अन्यथा गुणत्रयैरविदितानन्त गुणान् के नाम वर्णयन्तु ?अतः स्वयमेव स्वदेहभागेनात्मनो गुणान्वर्णयति । तथापि देहात् पृथक्त्वेन स्थित इति भक्तवात्सल्ये नावतरति । तर्हि बलदेव लक्ष्मणयोरपि श्रीकृष्ण पत्न्यो जानकी रुक्मिणी राधाद्या मातर ईश्वर्य्यः । तथा श्रीभागवते (१।३।२०) "एते चांशकलाः पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" इति ।

एवञ्चेद्यासां श्रीराधादीनां बलरामादयोऽप्यनुग्रह-

बलदेव श्रीकृष्णजीका ही अंश हैं, अभिन्नदेह, सर्वशक्तिमान् ईश्वर स्वयं प्रभु होकर भी कदाचित् अनुज लक्ष्मण, कभी बलराम होते हैं,इस प्रकार श्रीकृष्णके अनन्त गुणगण की वर्णना करनेके लिए भक्तभावमें निरन्तर स्थित होतेहैं । अन्यथा गुणत्रयसे अविदित अनन्त गुणोंका वर्णन कौन करेगा ? अतएव स्वयं भिन्नदेह धारण कर अपना गुण वर्णन करते हैं । तथापि देहसे पृथक रूपमें अवस्थित होकर भक्त वात्सल्य से अवतार ग्रहण करते हैं । इससे बलदेव लक्ष्मण,ईश्वर हैं श्रीकृष्ण पत्नीगण, जानकी, रुक्मिणी श्रीराधा प्रभृति मातृवर्गभी ईश्वर हैं । श्रीभागवत का प्रमाण इस प्रकार हैं । यह सब आदि पुरुषके अंश कला हैं और श्रीकृष्ण किन्तु स्वयं भगवान् हैं ।

ऐसा होनेपर जिस श्रीराधा प्रभृतिके अनुग्रहकी वाञ्छाभी बलराम प्रभृति कीभी होती है,उनके अङ्गसङ्गि वैष्णवगण अनुग्रह को

वाञ्छाकास्तामङ्गसङ्गिनो वैष्णवा अनुग्रहं वाञ्छन्ति यासामेवम्भुतास्तासामन्येऽङ्ग सङ्गिनोऽपि वैष्णवाः के ? किन्तु यदि परमकारुण्यं प्रभोः प्रकाशते, तर्हि लक्ष्मीरिति का नाम ? किंतया ? तथाच श्रीभागवते (४।२०।२८)।

१६। जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं,
स्यादेव यत् कर्मणि नः समीहितम्।
करोषि फल्ग्वप्युरु दीन वत्सलः,
स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया। इति।

तथापिलक्ष्यां वैष्णवदासकिङ्कराः प्रेमभिक्षुका व्यवहरिष्यन्तीति निश्चितार्थः। यस्मिन् काले स्वयमनन्तो वासुदेवरूप वैभवप्रकाशयतितस्मिन् काले लक्ष्मीर्विभवमयी, नतु

चाहते हैं, जिनके सम्बन्ध में ही ऐसी बातहै, अपर वैष्णवकी तो बात ही क्या है ? किन्तु श्रीप्रभुका परम कारुण्य प्रकाशित होता है, तब तो लक्ष्मीका महत्त्व ही कहाँ उनसे प्रयोजन ही क्या है। श्रीमद्भागवत (४।२०।२८) में इसका प्रसङ्ग है।

कर्मकरने से स्पर्द्धा असूयाके द्वारा इन्द्र प्रभृति अधिकारी के साथ विरोध होता ही है, किन्तु भक्तिमें भी क्या कलह की सम्भावना है, लक्ष्मीके साथ सेवालेकर विरोध उपस्थित होगा। कलह ही तथापि भजन करना ही है, जगज्जननीके साथ कलह अवश्य होगा, किन्तु अभिलषितकर्म करनेपर इन्द्रके साथ विरोध हुआ और श्रीप्रभुमेराही पक्षग्रहण कियेथे, उसप्रकार लक्ष्मीकेसाथ विरोध होनेपर श्रीप्रभुमेरा पक्षपात अवश्य करेंगे आप दीनवत्सल हैं, दयावान् हैं, स्वल्पको भी अनेक मानते हैं। ब्रह्मादि प्रार्थितलक्ष्मीको छोड़कर दीनका पक्षग्रहण

लक्ष्मीत्वेन प्रकाशते, अवतारे पृथक्त्वेनलक्ष्मी भूत्वा तदनु रूपं वैभवं प्रकाशयति यदात्वनन्त गुणविभागं करोति देहाद् पृथक्त्वञ्च न दर्शयति,अनन्तगुर्णमिश्रितःस्वयमनन्त वासुदेव रूप-वैभवं प्रकाशयति, तर्हि वैभवमयी लक्ष्मीः पत्नी नत्व वतारे पृथक्त्वे वैभवंप्रकाशयति,वैभवप्रकाशे वा ऽवतारे भाव कलादयःसमुदयन्ति। तद् यथा,अवतारे तावन्नग्नत्वम् धूलि खेलनम्, प्राकृतजनमैत्री निराकरणत्वमित्यादय एव दृश्यन्ते एवं लक्ष्मीः सम्पत्तिरूपा, गृहिणी गृहसंश्रया वैष्णवी च सर्वेषामप्युपादेया। इयन्तु सम्पत्ति कथाभिन्नैव।

प्रभु क्यों करेंगे? स्वरूप में अवस्थित श्रीप्रभुकी लक्ष्मीकी अपेक्षा नहीं है। तथापि लक्ष्मीके साथ वैष्णवदास किङ्करगण प्रेमभिक्षुकगण व्यवहार करते ही हैं। जिस समय स्वयमनंत वासुदेव रूप वैभवको प्रकट करते हैं, उस समय, लक्ष्मीभी वैभवमयी होती हैं, उस समय लक्ष्मी रूपमें अपने को प्रकाश नहीं करती हैं, अवतारमें पृथक् रूपसे लक्ष्मी होकर तदनुरूप वैभव को प्रकाश करती हैं।

जिस समय अनन्त, गुणविभाग नहीं करते हैं, देहसे तव पृथक् रूपमें लक्ष्मी को प्रकट नहीं करते हैं। अनन्तर गुण मिश्रित: स्वयमनन्त वासुदेव रूप वैभवको प्रकाश करते हैं. तब विभवमयी लक्ष्मी पत्नी रूपमें रहती हैं, अवतार में पृथक् रूपसे वैभव को प्रकाश नहीं करती हैं।

वैभव प्रकाशमें अथवा अवतारमें भाव एवं कलारूपादिका उदय होता है। उसका उदाहरण. अवतारमें नग्नता, शिशुवेश, धूलि खेलन,प्राकृतजनमैत्री शत्रुता प्रभृति व्यवहार होते हैं,इस प्रकार लक्ष्मी सम्पति रूपा,गृहिणी, गृहाश्रिता, वैष्णवी प्रभृति सेवक सुखदायक रूप

तथाचाद्याशक्ति-रुक्मिणी-जानकी-राधाविवरणन्तु शृण्वन्तु। यथा श्रीकृष्णः स्वदेहात् सकलाः शक्तिरैश्वर्य्य गुणांश्च पृथक् कृत्वा विनोदविलास-विग्रहेण व्यवहारं कुरुते, तथा आद्याशक्तिरप्येका प्रकृतिवैंभवाद्यवतारादि-सर्ववनितां प्रकाश्य स्वयं विलासमयी उदासीना निर्गुणा भावकलावैदग्धचादि-पाण्डित्याद्यनिर्वचनीयप्रधानगुणमयीराधारूपाविर्भवति आद्याशक्तिरियं तु राधारूपाविरभूत् पूर्वम् आत्मानमेव विलासमयी कृष्णञ्च विलासमयमेवम्भूतं जानाति स्वयं परम वैष्णवी भक्तिबलादेव जानाति। कृष्णएवात्मान सर्वांश्चान्यानपिजानातीति सएवैकोऽद्वितीय ईश्वर इति निश्चयः परम रहस्य सारइति।

में प्रकट होती हैं। इस प्रकार सम्पत्ति की कथा पृथक है।

इदानीं आद्याशक्ति–रुक्मिणी–जानकी-राधाआदिका विवरण श्रवण करो, जिस प्रकार श्रीकृष्ण निज देहसे सकल शक्ति, ऐश्वर्य्य गुण सकलको पृथक करके विनोद विलास विग्रह से व्यवहार करते हैं, उस प्रकार एक आद्याशक्तिसे भी प्रकृति वैभवादि अवतारादि की सब वनिता को प्रकट कर स्वयं विलासमयी उदासीना निर्गुणा भावकला वैदग्ध्यादि पाण्डित्यादि अनिर्वचनीय प्रधान गुणमयी राधारूप स्वरूप का आविर्भाव होता है, यह आद्याशक्ति सबसे पहले राधा रूप में आविर्भूत होती है,अपने को विलासमयी रूपसे जानती है,और कृष्ण को विलासमय रूपसे जानती है, स्वयं परम वैष्णवी भक्ति के बलसे ही जानती हैं, कृष्ण ही अपने को एवं अन्य सबको जानते हैं, श्रीकृष्ण ही एक अद्वितीय ईश्वर हैं,यह निश्चय परम रहस्य सार है।

२० । पुरुषेषु यथा कृष्णः स्त्रीषु राधातथैवहि ।
अन्यास्तदनुयायिन्यो यथा पुंसोऽनुयायिनः ॥

यथागौरिशक्तिरूपा राधावयवसम्भूतामहेशस्यापि कदाचिदुपदेष्ट्री श्रीकृष्णस्याग्रे कदाचिद्वरंबव्रे राधाकृष्ण विहारमहं द्रष्टुमोहे । ततश्च कृष्णाद् वरं लब्धा वृद्धारूपेण गोकुले जन्मलब्धा तत् दृष्टवती ।

अतः सापि सम्पत्तिरूपा देहात् पृथक्भूतेती राधा विलासावतारान् नो वेत्ति । किमन्यद्वा मत्वापि. आदिरपि पुमान् नो वेत्ति । एतेन राधाकृष्ण रहस्यं मनसोऽप्यगोचर मिति तात्पर्य्यार्थः ।अतएव, नाजादयोऽपिस्वतएवजानन्ति, एतद्भागवतेविदितम् ॥

पुरुषों में जैसा कृष्ण अद्वितीय एक हैं, सकल स्त्रीयों में श्री उस प्रकार श्रीराधा एक अद्वितीया हैं,समस्त पुरुष जैसे श्रीकृष्ण के अनुयायी हैं, वैसे समस्त प्रकृति श्रीराधिका के अनुयायी हैं, जिस प्रकार गौरीरूपा शक्ति श्रीराधा के अवयवसे उत्पन्न हुई हैं,कभी कभी महेश को उपदेश देनेवाली भी होती हैं,उसने श्रीकृष्ण के आगे वर प्रार्थना की,राधाकृष्ण के विहार मैं देख सकूँ ? अनन्तर श्रीकृष्णसे वर प्राप्त कर गोकुल में वृद्धा रूपमें जन्म लेकर सब कुछ देखने में समर्थ हुई।

वह गौरी देहसे पृथक् उत्पन्न होकर सम्पत्ति रूपा हेतु राधाकृष्ण विलास अवतार सकल को नहीं जानती हैं,कुछ अन्य प्रकार मानकर भी जानती हैं, आदि पुरुष महाविष्णु भी नहीं जानते हैं । इससे ज्ञात होता है, कि राधाकृष्ण रहस्य मनके अगोचर ही हैं, यह ही तात् पर्य्यार्थ हैं, अतएव ब्रह्मादि लोकपालगण भी स्वत ही कृष्ण

लक्ष्मीश्च वैकुण्ठविभवमयी राधासाम्यं न लभते, इति श्रीमद्भागवते बहुश्लोकाः यथा (भा ११।४७।६०)।

२१। नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः,
स्वर्योषितांनलिनगन्धरुचांकुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्यभुजदण्ड-गृहीत-कण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रजसुन्दरीणाम्। इत्याद्याः॥

२२। गुणमय्यःस्त्रियःसर्वाः पुमांसश्चगुणोद्भवाः।
राधातु निर्गुणा कृष्णो निर्गुणः समता कथम्॥

२३। राधाच निर्गुणमयी कृष्णोऽपिनिर्गुणः स्मृतः॥

लीला को नहीं जान पाते हैं, यह रहस्य श्रीभागवत में वर्जित हैं, उससे ज्ञात होता है।

लक्ष्मी वैकुण्ठ विभवमयी शक्ति हैं, श्रीराधा की समानता को प्राप्त कर नहीं सकती हैं,इस विषय में श्रीमद्भागवतमें अनेक श्लोक हैं, (७०।१०।४७।६०) गोपियों के प्रति श्रीभगवान् का प्रसाद अत्यन्त अपूर्व हैं, वक्षस्थल में रहकर भी लक्ष्मी एकान्त रतिमति होकर भी उस प्रकार प्रसाद का अधिकारी न हुई उनके प्रति अनुग्रह है ही नहीं जिन सब देवलोक की नारियों के अङ्ग में पद्मगन्ध है,ये भी उक्तप्रसाद की आशा ही नहीं कर सकती हैं, अपर स्त्री की बात तो दूर रह गई, उक्त प्रसाद कैसा हैं, रासोत्सव में कृष्ण भुजदण्ड द्वारा आलिङ्गित कण्ठ होकर गोपीयों नें जिस प्रसाद को प्राप्त किया था।

समस्त स्त्री गुणमयी हैं और पुरुष सबभी गुणोंसे समुत्पन्न है, राधा किन्तु निर्गुण हैं, और कृष्ण भी निर्गुण हैं, अतएव इनदोनों के साथ समता कैसे हो सकती है। राधा निर्गुणमयी हैं, कृष्ण भी निर्गुण हैं यह शास्त्र संवाद है।

नकथंसाम्यं भविष्यति ? किन्तु वैकुण्ठ विभवे लक्ष्मीः सर्वाधिकारिणी सर्वदेवशिरोरत्नभूता वैकुण्ठनाथस्य परम प्रेयसी, वैकुण्ठनाथोऽपी तस्यां लम्पटः ॥

एवं यथा ब्रह्माणी ब्रह्मणःभवस्यच भवानीति। अवतारेतु लक्ष्मीरूपा जानकी रुक्मिणी च राज राजेश्वर वैभवानु स्नानेनेश्वरस्य परमप्रेयसी,तस्यांतरयामीश्वरोऽपि लम्पटः।

तस्माद् विलासविनोदावतारेऽपि सर्वनिरपेक्ष भावेच्छा यदाभवति,तदैव राधासङ्गं कुरुत इति। अतएव द्वादश-त्रयो दशवर्षाभ्यन्तर एव वृन्दावनेऽपि मातापितृसङ्गं च त्यक्त्वा उदासीनः परमहंसः सर्वैरेवसङ्गंनिगूढ़ो निगूढ़वनैरपि निगूढ़ो रमते। तत्रैव यदिकदाचिदेवान्यकार्य्यं पतति, तर्हि व्यवहार

कैसे समता नहीं होगी ? किन्तु वैकुण्ठ विभवमें लक्ष्मी सर्वाधिकारिणी सर्वदेवशिरोरत्न भूता वैकुण्ठ नाथ की परम प्रेयसी रूपा है, वैकुण्ठ नाथ भी उनमें लम्पट हैं।

अतएव विलास विनोद अवतार में भी सर्वनिरपेक्ष भावकी इच्छा जब होती है, उस समय श्रीराधा सङ्ग करते हैं। अतएव द्वादश त्रयोदश वर्ष के मध्यमें ही वृन्दावन में भी माता पिता के सङ्ग को छोड़कर उदासीन परमहंस समस्त सङ्गसे निगूढ़ निगूढ़ वन में भी निगूढ़ लीला करते हैं। वहांपर यदि कदाचित् अन्य कार्य भी आ पड़ता है तो व्यवहार के अनुरूप ऐश्वर्य-शौर्य्य-चातुरी का प्रबन्ध चतुर शिरोमणि करते हैं।

अतएव विचार करो अपने चित्तमें राधाकृष्ण विवरण किस प्रकार अनिर्वचनीय वस्तु है,परम प्रेममय-सकल-रस-सम्पूर्ण परमानन्द

सम्मतानैश्वर्य्य-शौर्य्य-चातुरीप्रबन्धांश्चतुर शिरोमणिः कुरुते।

तस्माद् विचार्यताम् स्वचेतसि राध कृष्णविवरणं किम वानिर्वचनीयं वस्तु, परम प्रेममयं सकल रस सम्पूण परमा नन्द स्वरूपमुत्तम भागवतानां जीवनम् नातः परः श्रेयः प्रकाशः कदाचिदपि लभ्यते, अनेक जन्म भाग्योदयैरेव कदा चिच्छ्रवणभाग्यैः श्रुयते ॥

राधा सौभाग्याधिकच्यं किं वा वर्ण्यते ? पश्य पश्य ! रुक्मिण्यादि-सकल महिषी सकल सौभाग्यंविदपि राधाभावं गोपीभावञ्च विलोक्य श्रीमदुद्धवोयथाभूत् तत् सर्वं श्रीमत् भागवते वेद्यम् । सकल महिषी-भावं विस्मृतवान्, दासाना-

---

स्वरूप है, वह ही उत्तम भागवत परमहंसों का जीवन है। इससे आगे मङ्गल प्रियता कल्याण का प्रकाश कहीं पर भी नहीं मिलता है, अनेक जन्म की सुकृति के फलसे यदि सौभाग्य का उदय होता है, तभी श्रीराधाकृष्ण विवरण सुनने का भाग्य होता है।

श्रीराधिका के सौभाग्याधिक्य की बात क्या कहें ? देखो, सकल सौभाग्य के ज्ञाता होकर भी रुक्मिण्यादि सकल महिषी राधा भाव को गोपीगण का देखकर आश्चर्य्य ही गई थीं, श्रीउद्धव की भी अवस्था राधाभाव–गोपीभाव को देखकर जैसी हुइ थी, उसका विवरण श्रीभागवत से ही जानना कर्त्तव्य है। सकल महिषी भावको भूलही गये थे, दास सकलकी एवं सखागण की तो अकिञ्चनता का दर्शन किए थे। श्रीउद्धवजी का कथन है कि-शरीर धारियों में गोपी गण ही सफल जन्मा है, कारण ये सब के रूढ़भाव श्रीकृष्ण में हैं। जिस रूढ़ भावको भवमय भीत मुमुक्षुगण,एवं मुक्तगण एवं हम भक्त भी चाहते ही हैं, अतएव अनन्तकी कथामें राग हो ऐसा ब्रह्म जन्म

आत्मवद् भक्तानामकिञ्चनतां दृष्टवान्, (भा० १०।४७।५८)

२० । एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्दएव निखिलात्मनि रूढ़ भावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मनुयोवयञ्च
कि ब्रह्मजन्मभिरनन्त कथारसस्य । इत्यादि ।

स्वयं ब्रह्मणापि गोकुलगोपिकानां सम्बन्धे यथोक्तम्, तदपिविदितम् । तथाच श्रीनारदः कदाचिद् द्वारकामागत्य राधारहस्यंपृष्टवान् । तद्धिस्वयंप्रभुः कथयस्तमेव भावं स्मारं स्मारं प्रेमविमोहितः सादरं नारदं गोकुलं प्रेषयामास श्रीनारदस्तु राधाभावं विलोक्य तत्रच कृष्णभावं विलोक्या त्मानं विस्मृतवान् श्रीराधांकृष्णञ्च संदृश्य राधाकृष्ण प्रशं-

---

शुक्र सावित्र्य याज्ञिक रूप तीन से लाभ ही क्या है ? यह रूढ़ भाव जहाँजहाँ आविर्भूत होता है, वेसब ही सर्वोत्तम है । अथवा चतुर्मुख ब्रह्मा जन्मसे भी क्या प्रयोजन है ? गोपी जन्म हीश्रेष्ठ है ।

स्वयं ब्रह्मा जीने भी जो कुछ कहाँ है गोकुल गोपीगण के सन्दर्भ में वह तो सुस्पष्ट है । तथाच श्रीनारद कदाचिद् द्वारकामें आकर राधा रहस्य पुछेथे । तव स्वयं प्रभु कहते कहते भाव को भी स्मरण करते करते प्रेम विभोर होकर सादर नारद को गोकुल भेजदियेथे । श्रीनारद ने वहाँ जाकर श्रीराधाभाव को देखा द्वारका में भी श्रीकृष्ण भावको देखाथा इन दोनों को विचार कर अपने आपको ही भूलगया । श्रीराधा श्रीकृष्ण को देखकर राधाकृष्ण की प्रशंसा के द्वारा अपनेको प्रेम विह्वल पाकर कृतार्थ माना । रुक्मिण्यादि के भावको इस प्रकार से विचार उन्होंने नहीं किया । इसी भावका एक पौराणिक श्लोक भी

सयात्मानञ्च प्रेमविह्वलःकृतार्थं मेने। रुक्मिण्यादि-महि
णाञ्च भावो न तथेति विचारितवान्। तथाच श्लो
कोऽपि पौराणिकः (श्रीपद्मावली ३७१)।

२५। रत्नच्छायाच्छुरितजलधौमन्दिरे द्वारकायाः,
रुक्मिण्यापि प्रबल पुलकोद्भेद मालिङ्गितस्य॥
विश्वंपायान्मसृणयमुनातीर-वानीरकुञ्जे,
आभीरस्त्रीनिभृतचरितध्यानमूर्च्छामुरारेः॥

अन्यच्च यत्रयत्र विलासविनोदं लाम्पट्यं वा कृष्
करोति,तत्र तत्रैव राधाध्यानमेव जाग्रद्रूपम् तेनैव निर्वृतः
अन्यत्र कार्य्यानुरोधे कपटमैत्री। ऐतेन ज्ञातव्यः श्रीकृष्णस

है। रत्न कान्ति प्रतिविम्वित द्वारकास्थित रत्न मन्दिरे रुक्मिणी द्वा
निविड़ आलिङ्गित एवं प्रबल पुलकायित देहमें कृष्णचन्द्र अवस्थ
कररहे थे, उस समय जलधि को देखकर एकान्त यमुनातीरवेतसकु
आभीर स्त्रियों की निभृत सेवा का ध्यान में मन निमग्न हो जाने
रुक्मिणीके देहमें आलिङ्गित अवस्था में ध्यान मूर्च्छा को प्राप्त कि
थे। वह मुरारी की ध्यानमूर्च्छा विश्व की रक्षा करें।

अन्य कथा और भी है, जहाँ जहाँ श्रीकृष्ण विलास वि
अथवा लाम्पट्य कामुकता करते हैं, वहाँ वहाँ भी श्रीराधा ध्य
जागरूक होकर ही हरता है, उससे ही श्रीकृष्ण परिपूर्ण आनन्दल
करते हैं। अन्यत्र कार्यानुरोध से कपट मैत्री करते हैं। इससे अव
जानना होगा कि श्रीकृष्णका अवतार श्रीवृन्दावन में रासलीला
परिपूर्णता की प्राप्ति के लिए ही है। यह वात तो सुस्पष्ट ही है

राधा यह नाम किस विधिने निर्माण किया है, सर्वेश्वर श्रीकृ
स्वयं दास के समान वशीभूत हैं।

वृन्दावन रासावधि प्रकाश एवावतार इति व्यक्तार्थः।

२६। राधेतिकिमिदं नाम विधिना केननिर्मितम्,

सर्वेश्वरोहि यः कृष्णो यस्याः किङ्करदासवत् ॥

२७। राधेतिमोहनंनाम न जानेकुतआगतम्

षड़ैश्वर्यमयंकृष्णंशृङ्गारैः क्रीतवद्धनैः ॥

२८। हाहानिष्करुणाराधाक्वगतागुणविग्रहा

गुणसङ्घेबहुस्थानेलब्धाभ्रमितवान् प्रभुः ॥

पश्य,पश्य,निगूढ़ातिनिगूढ़ निरूप्यते-सकलन्द्रियैः सावधाना महान्तः परममङ्गलं रहस्यं शृण्वन्तु। श्रीकृष्णचैतन्यदेवः, प्रकटपरमानन्द-विग्रहोऽपि सर्वावतारसारभूतोऽपि सर्वावतार शक्ति-प्रकाशसमर्थोऽपि सर्वावतारव्यक्तये दास-दासीसङ्ग वानपि राधासङ्गप्रकाशं न कृतवान् अस्य सर्वावतारप्रकाशत्वं

राधा यह मोहन नाम मैं नहीं जानता हूँ कहाँ से आया है, षड़ैश्वर्यमय कृष्ण को भी शृङ्गार धन से जिसने खरीद लिया है।

स्वयं प्रभु श्रीकृष्ण श्रीराधा बिछुड़ जानेपर हा हा निष्करुणा राधा गुण विग्रहा क्व गता इसप्रकार सरोदन पूकार पूकार कर गुणियों के वीचमें बहुस्थान में ढ़ूँढ़ ढ़ूँढ़ कर घुमने लगे थे।

देखो देखो निगूढ़ातिनिगूढ़का वर्णन कररहा हूँ, सकल इन्द्रिय द्वारा सावधान होकर सुमहान् व्यक्तिगण,परम मङ्गल रहस्य को श्रवण करें। श्रीकृष्ण चैतन्यदेव, प्रकट परमानन्द विग्रह होकर भी सर्वावतार सार स्वरूप होकर भी, सर्वावतार शक्ति प्रकाश समर्थ होकर भी सकल अवतार प्रकट करने के लिए सकलावतार के दास दासीगण मिलित होकर भी राधा सङ्गका प्रकाश नहीं किए।

सर्वैरेव निश्चितमास्ते। तथापि रहस्यमेकं युक्तमेवश्रूयता।

श्रीकृष्णःसकलविलास-विनोदरूप-कशोरादिगुणसम्पन्नो स्त्रीणामेववनचरीणांमोहनचकार। किमेतत्? श्रीकृ चैतन्यस्तुकौपीनधारी दीनवेशः सन्न्यासाश्रमालङ्कृतोऽत्य दुर्दान्तं बलवन्तं महावृषभ-दुर्द्दरूढ़मध्यात्मवादिन विषया कुयोगिनं जड़मजस्त्रमद्यपंपापं चण्डाल यवनं मूर्ख कु स्त्रियश्च प्रेमसिन्धौ पातयामास,आनन्देन वैकुण्ठोपरिस्थाप मास। केवलं प्रेमधारयैव सर्वेषामाशयं शोधितवान्, आसु भावञ्च चूर्णितवान्। किमन्यद्वा बहुवक्तव्यम्? पुरुषा

श्रीकृष्णचैतन्य देव, सर्वावतार प्रकाश है, इस बातको समस्त जनग सुनिश्चित रूपसे ही जानते हैं, तथापि रहस्य एक अतियुक्ति युक्त उसको श्रवण करो।

श्रीकृष्ण, सकल विलास-विनोद कैशोरादि सम्पन्न होकर वनचरी स्त्रियों को ही मुग्ध किए थे। यह क्यों?—

किन्तु श्रीकृष्ण चैतन्यदेव, कौपीन धारी, दीनवेश सन्न्या श्रमालङ्कृत होकर, अत्यन्त दुर्दान्त, बलवन्त, महावृषभ के सम दुर्दूरूढ़, भीषणवर्द्धित अध्यात्मवादी को, विषयान्ध को, कुयोगि अगणित जड़ अलसजन को मद्यपको पाप, चाण्डाल, यवनमूर्ख, कु स्त्रियोंको श्रीकृष्णप्रेम सिन्धुमें निमज्जित कियेथे,एवं आनन्द सम्पि के साथ सर्वोच्च वैकुण्ठमें स्थापन किये थे। केवल प्रेमधारा से ही स की कर्मवासना की शुद्धि किये थे,आसुरिक भाव को चूरचूर करदि थे। अधिक और क्या कहना है? पुरुष होकर भी प्रकृति भाव प्राप्त किए थे। श्रीकृष्ण चैतन्य भाव कला से विमोहिता होक

एव प्रकृतिभावं निनाय। श्रीकृष्णचैतन्यभावकला-विमोहिताः श्रीगदाधरपण्डित-भावदर्शनसमुदित-गोपीगणभावाद्वेदान्तिनो ऽपिविषयिणोऽपि प्रकृतिभावेन नृतुः, वैष्णवानां का कथा? तथापिराधेतिनामरूपपञ्चव्यक्तं धरणीमण्डले न प्रकाशितवान् श्रीराधा गदाधरपण्डितएव, सकलचरित्रभावञ्च प्रशस्य स्वं विख्यातः। तथापि नाम तस्यापिरूपञ्च निगूढ़कृद्भावैस्तु,राधा कृष्ण विना कमन्यं नबोधयामास। राधाकृष्णःभावमयंजगदेव कृतम्, तदेवसम्प्रकाशितवान् राधानाम्नःश्रवणात् स्मरणाद् विलपितवान्, रुदितवान् प्रमुदितवान्, नर्तितवान्, तथापि संगोपितवानेव।

श्रीगदाधरपण्डितस्तु, यथा श्रीकृष्णचैतन्यः सर्वावतार प्रकाशभूमिस्तथा सकल वैभवमय श्रीसमूहप्रधानभूतः। यथा

श्रीगदाधर पण्डित के भावदर्शनसे गोपीगण के भाव समुदित होने पर वेदान्तिगणभी एवं विषयीगणभी प्रकृति भावसे नृत्य कियेथे। वैष्णवों की बात ही क्या है? तथापि'राधा'यह नाम एवं रूपको सुस्पष्ट रूपसे भूमण्डलमें प्रकाशित नहीं किये। श्रीगदाधर पण्डित ही श्रीराधा हैं, सकल-चरित्र एवं भाव को उत्तम रूपसे प्रकट कर स्वयं ख्यात हुये थे। तथापि उनका नाम एवं रूपको अतिशय गुप्तरखे थे। भावद्वारा ही श्रीराधाकृष्ण का कीर्त्तन किए थे। राधाकृष्ण को छोड़कर अपर किसी का भी परिज्ञान नहीं कराये, श्रीराधाकृष्ण भावमय ही जगत्को किए एवं उसको ही प्रकाशित किए। राधानाम सुनने से ही स्मरण से ही विलाप करते थे, व उल्लसित होते थे, नृत्य करते थे। तथापि श्रीराधा नाम को सर्वथा ही गुप्त रखे थे।

श्रीकृष्णचैतन्यो निर्गुणस्तथापण्डितोऽपिनिर्गुणः एतयोरेव दैहिकमैत्री। निर्गुण–गुणिनोमैत्री छिन्नभिन्ना ततःतत्रैव पण्डितदेहेराधाभावेनविलास कुरुते अन्यत्र वैभवपक्षे लक्ष्मीः रुक्मिणी,सीता, कात्यायनीपरम प्रेयसी,सर्वमयस्तुपण्डितएव किञ्च,गुण गुणिनो मैत्री निर्गुणस्यागुणस्यच गाढ़ानुरागाद् भवति। सगुण-निर्गुणयोर्मैत्रीगाढ़ानुबन्धातःस्यात्। श्रीकृष्ण स्यैव सर्वशक्तिमत्तयासर्वत्रमैत्रीघटते, तदपिनानामतवैभव चातुर्येणसम्पद्यते,नतु सहजम्। कृष्णस्योदासीनावलासविनोद मय सकलस्वभावस्तेन राधाकृष्णमिलनमेवसत्यम् तथा श्रीकृष्णचैतन्य-गदाधरपण्डित-मिलनमिति। भक्तानामिदमेव

श्रीकृष्ण चैतन्य जिस प्रकार सर्वावतार प्रकाशभूमि, ठीक उसी प्रकार सकल वैभवमय श्रीसमूह प्रधानभूत श्रीगदाधरपण्डित गोस्वामी हैं। तथा श्रीकृष्ण चैतन्यदेव निर्गुण तथा श्रीगदाधरपण्डित गोस्वामी भी निर्गुण है, इन दोनों अर्थात् श्रीगौराङ्ग एवं श्रीगदाधरपण्डित गोस्वामी में दैहिक मैत्री है। निर्गुण और गुणि की मित्रता छिन्न भिन्न होती है। इस लिए पण्डित के देहमें राधा भाव से आविष्ट हुए थे। अन्यत्र वैभव के पक्षमें लक्ष्मी रुक्मिणी सीता कात्यायनी, परम प्रेयसी सर्वमय किन्तु श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी ही हैं।

और भी गुणि गुणि की मैत्री निर्गुण एवं अगुण की भी मैत्री गाढ़ानुरागसे होती है। सगुण निर्गुण की मैत्री गाढ़ानुरागसे होती है सगुण निर्गुण की मैत्रीमें गाढ़ानुराग की अपेक्षा ही नहीं है,एवं गाढ़ानु बन्ध भी नहीं होता है। सर्व शक्तिमय होने के कारण श्रीकृष्ण की मैत्री सर्वत्र सम्भव हैं, वह भी नानामत वैभव चातुरी से होता है। स्वाभाविक मित्रता नहीं होती है, कृष्ण का उदासीन भावसे ही सर्वत्र

सत्यंजीवनञ्चेति विषयिणां । पौराणिकानां कुपण्डितानांवहु प्रलापवादिनान्तु भिन्नभिन्नेवमतिरिति, हाहातेषांमहा दौर्भाग्यम्! हाहातेषांमहाप्रलयः। तस्माज्जगतिभक्ताएवचतुराः भक्ताएवधन्याः भक्ताएवपण्डिताः भक्ताएवगुणिनः, भक्ता एवसुखिनः भक्ताएवनिर्भयाः । त एव सुखंयुगेयुगेजीवन्तु,हत भाग्यं जनं दर्शन स्पर्शनालापैः कृतार्थी कुर्वन्तु ।

एवमन्यच्चरहस्यं किञ्चिद् वर्णयामि । श्रीकृष्णचैतन्य प्रभुणाश्रीनित्यानन्देनावतारे संहृते महान् प्रलयोभविष्यति । देवनिग्रहैराजनिग्रहैश्च प्रजा दुर्गताभविष्यन्तीति । वैष्णवाः सर्वएवमहान्तोदिनेदिनेईश्वर सङ्गमेचलिताः। केचित्केचिदेव

विलास विनोदमय सकल स्वभाव है अतएव राधा कृष्ण मिलन ही सत्य है । ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण चैतन्य-गदाधरपण्डित का मिलन भी सत्य है । भक्तवृन्दोंका यह ही एकमात्र सत्य व जीवन है । विषयी कुपण्डित, अनर्थक वाक्यालापपरायणजनगण की भिन्नभिन्न ही मति है । हाय ? हाय ? कैसी गति है ।

उन सबके दौर्भाग्य है, महादौर्भाग्य है,हाय ! हाय ! उन सबका कैसा महान् प्रलय है ! अतएव जगत्में भक्तगण ही चतुरहैं भक्तगण ही धन्य हैं भक्तगण ही पण्डित हैं, भक्तगण ही गुणी हैं भक्तजनही सुखी भक्तजन ही निर्भय हैं वेसब सुख पूर्वक युग युग मे जीवित रहें और हतभाग्य जनको दर्शन स्पर्श आलाप द्वारा कृतार्थ करें ।

इस प्रकार कुछ अन्य रहस्य भी कहूँगा श्रीनित्यानन्दप्रभु के साथ श्रीकृष्ण चैतन्यप्रभु अप्रकटलीला स्वीकार करने पर महान प्रलय होगा । देव निग्रह एवं राजनिग्रह से प्रजागण दुःखी होंगे । श्रेष्ठ

स्थास्यन्ति, तेऽपिनिजप्रभावंसंहरिष्यन्ति । केवलमन्त:प्रीतिमेव निगूढ़प्रेमकदाचित्कदाचिदेवबोधयिष्यन्ति। तत्तुमहद्भिरपि बोद्धुंनशक्यते हरिकीर्त्तनञ्चविरल प्रचार भविष्यति सत्सङ्गमश्च विरल: । ईश्वरसेवाच मन्दंमन्दं स्यात् ।

तथाचकर्मधर्म-सापेक्षभक्त: कर्मधर्मनिरपेक्ष: पववयोगी तद्वेषधारीच, एतेनचतुर्धाभेदेन ग्रहणंस्यात् । तदेतेनभक्तिवर्त्मनिप्रकाशेकलङ्कंदृष्ट्वा महान्त:केवलंकिञ्चदपिनिग्रहानुग्रहंकर्त्तुमसमर्था मुर्च्छिता भविष्यन्ति किन्त्वत्र सार्वभौमं प्रति कथाप्रश्नोत्तरेयत्प्रभुणा श्रीकृष्णचैतन्येनकथितमास्ते, तदेव कथयिष्यामि ॥

कर्मधर्मपरोवैष्णव: सेवाकीर्त्तन व्यवहारादिकंसर्वं करोत्येव।

वैष्णवगण दिनदिन परलोक गतहो जायेंगे, कोई कोई व्यक्ति रहेंगे। वे भी निजप्रभाव गोपन करेंगे, केवल अन्त: प्रीति निगूढ़ प्रेम कदाचित् कदाचित् प्रकाश करेंगे। वह भी महत्गणभी जान नहीं सकेंगे। श्रीहरिकीर्त्तन का विरल प्रचार होगा। सत्सङ्गम भी विरल होगा। ईश्वरसेवा भी मन्द मन्द होगी।

उस समय कर्म-धर्म-सापेक्षभक्त, कर्म धर्म निरपेक्ष भक्त पवव योगी एवं केवल वेशधारीभक्त-ये चार प्रकार देखे जायेंगे, केवल वेश से ही परिचय होगा, आचरण विपरीत रहेगा, ये सबका प्रवेश भक्ति मार्गमें होने के कारण कलङ्क को देखकर महत् व्यक्तिगण अनुग्रह निग्रह करने में असमर्थ होकर मूर्च्छित हो जावेंगे, यहाँपर किन्तु सार्वभौमके प्रति कथा प्रश्नोत्तरमें प्रभु श्रीकृष्णचैतन्य देवने जो कुछ कहा था, उसको कहेंगे।

निरपेक्षोऽपिकर्मधर्म-सापेक्षः। कर्मकाण्डेनित्यनैमित्तिके उपसन्ने कृष्णकार्यबाधेऽपितदेवकरोति, अतएव कृष्ण कर्मणि निरपेक्षोनभवति। कर्मण्येवनिस्तारहेतुकात्मभावात् कृष्णकर्मण्यात्मभावोनजायेत। कृष्णसुखदुःखेसमर्वात्तिलोकेषु कर्मधर्मादिकमेवग्राह्यति। वैदिक श्चेन्निरपेक्षमवैदिकं

आत्मज्ञान भगवत् प्रीति समाप्त हो जानेपर शरीर और शरीर सम्बन्धिवस्तु का ज्ञान स्वाभाविक रहता है,अतएव वैष्णवधर्म ग्रहण कारी व्यक्तिगण शरीर एवं शरीर सम्बन्धमें लाभ पूजा प्रतिष्ठा आरोग्य आदि के लिए ही भगवत् साधु सेवा-हरिनाम कीर्त्तन प्रभृति यावतीय व्यवहार ही करते रहेंगे। जो वैष्णव निरपेक्ष है,अर्थात् कौपीनधारी विरक्तवेशी है,वे सबही शरीर इन्द्रियव्यवहार निर्वाहके उद्देश्य सेही वैष्णवधर्म को अवलम्बन करेंगे, श्रीकृष्ण सेवाके लिए नहीं। नित्य नैमित्तिक कामना मूलक धर्मका अनुष्ठान का अवसर प्राप्त होने पर वैष्णवगण कृष्णसेवा कृष्ण भक्तिकीबाधाहोने परभी नित्यएवं नैमित्तिक कर्मको करेंगेही,कारण उससे अर्थकी प्राप्ति होगी,भक्तवृन्दका आगमन होगा, वेलोक दान करवायेंगे। अतएव कृष्णसेवा में वैष्णवगण निर पेक्ष नहींहोंगे,अर्थात् कृष्णभक्तिके लिए ही कृष्णसेवा नहीं करेंगे,किन्तु भक्त,दाता, सेवक के मनोरञ्जन के लिए करेंगे उससे अर्थप्राप्तिका पथ प्रशस्त होगा, भोज भाण्डारा वैष्णवसेवा आदि ही परलोक प्राप्तिका एकमात्र साधन है, इसमें मन का निश्चय है, श्रीकृष्णभजन व्यर्थ है, वह केवल जनरञ्जनका साधन हैं, इस प्रकार मनमें दृढ़ निश्चय होने के कारण कृष्णभक्ति में दृढ़ता ममत्वकर्त्तव्य आदिका सम्पूर्ण अभाव होगा, जो लोक सम्पूर्ण देहेन्द्रियासक्त अशिक्षित, आहार, निद्रा, भय, मैथुनकोही जीवन का सार जानते हैं,कृष्णभक्ति आदिपरतत्वमें सम्पूर्ण अज्ञ, उदासीन विरोधी एवं ममता शून्य हृदय हैं,ढूँढ़ ढूँढ़ कर उनसब

पक्वयोगिनंगर्हयति लोकानाञ्चबुद्धिंनाशयति । लोकाश्चतद् धार्मिकवैष्णवानां वचनं मान्यमितिबुद्धयामुह्यन्ति । निरपेक्ष पक्वयोगिषुलघुबुद्धयोवितर्कं कृत्वा नश्यन्ति अतोऽस्यहृदय ज्ञातुं न शक्यते । तस्मादयमेववैष्णवो महानितिव्यवहारादिभि रेव, नतुमहद्भिः परमहंसभूतैः ॥

कर्मनिरपेक्षः कृष्णसापेक्ष पक्वयोगी तु महद्भिः सवँ

को शिष्य सेवक अनुगत वनायेंगे, और काम्य कर्म धर्म आदि भी शिखावेंगे।

यदि कोई व्यक्ति वैदिक कर्मरत हैं, तो वह निरपेक्ष अवैदिक पक्वयोगिकी निन्दा करेगा और लोकों की बुद्धिको भ्रष्ट करदेगा, लोक शिक्षित आचरणशील धार्मिक वैष्णवोंके वचनमें सन्देह करेंगे, अर्थात् निरक्षर मूर्ख आचरण विहीन लोक गुरुवृत्तिको अर्थके लिए अवलम्बन करेंगे, लोकभी अशिक्षित वैष्णवकी बातका महत्व ज्यादा देंगे, और शिक्षित धार्मिक वैष्णव के वचन पर सन्देह करेंगे। छोटी बुद्धिवाले देहेन्द्रिय परायण होते हैं, वे लोक निरपेक्षनिपुण साधुके प्रतिजनताकी अश्रद्धा हो इस प्रकार सतत चेष्टा करेंगे एवं धर्मका नाश कर स्वयं नाश प्राप्त हो जायेंगे, कपट आचरण के द्वारा जगत् व्याप्त होजायगा, मनकी बात क्या है जाननासम्भव नहीं होगा। इसलिए भोजनदानआदि के द्वारा अतिधूर्त्त लोक सबधर्मग्रहण कर देहेन्द्रिय की तृप्तिविधान करेंगे और दलवद्ध होकर जागतिक रीतिसे वहुमतसेमहत् व्यक्तिकानिर्वच न करेंगे वेलोक जिसको चाहेंगे वहमहान् होजावेगा, आचरण एव धर्म शास्त्रज्ञानकी कोई आवश्यकताही नहीं होगी। वास्तविक महान ज्ञानी भक्त प्रभृतिलोकमहान् नहीं होंगे, जनता उनसबको समर्थननहीं करेगी

जो वैष्णव काम्यकी अपेक्षा नहीं करते हैं केवल भक्तिकी अपेक्षा कृष्णकी अपेक्षा रखकर भक्तिका आचरण करते हैं वे सब पक्वयोगी

रेव परमहंसभूतैः पूज्यते आत्मभावश्च यथाकृष्णे तथाक्रियते तस्मात् कर्मसापेक्षः प्राकृतेषु महान्, कृष्णसापेक्षः साधुषु महानिति ॥

पक्वयोगिनश्चरित्रं श्रूयताम्, धर्मकर्मादिकं न जानाति, श्रीकृष्णरस-यशोराशि-विलास-विनोदभाव-कला-भावनाति मग्नहृदयः केवलं मधुपानमत्तइवविस्मृतइव। कर्मधर्मादिकं हृदये तस्य न प्रविशति। निरन्तरं कृष्णचरितंकथयति, गायति, शृणोति, ध्यायति, नृत्यति। आत्मभावान् प्रेमगाम्भीर्योन्मादाश्रुपुलक-कम्पमूर्च्छासिंहनाद-हास्यरोदन-चित्तप्रसाद

होते हैं शास्त्रीयपरमहंस रूप महद्गण उनको सम्मान करेंगे। श्रीकृष्णके प्रति जैसी ममता आवश्यकहो ठीकउसीप्रकार ममत्व उनके प्रतिभाव करते हैं। अतएव देहेन्द्रियभोग प्रधान जगत् प्राकृतमें देहेन्द्रिय अर्थ प्रतिष्ठापोषक कर्मकी अपेक्षासे कृष्णभक्तिकरने वालेको प्राकृत बुद्धिवाले व्यक्तिगणमहान् घोषित करेंगे। जो जनसमस्त कर्ममें कृष्णसुखको ही लक्ष्य रखकर धर्माचरण करेंगे उनको जनता नहीं मानेगी, किन्तु यथार्थ साधुगणकी दृष्टिमें वे महान् होंगे।

पक्वयोगीका चरित्र श्रवण करो। वे लोक इहलोक-परलोक के लिए धर्मकर्मप्रभृति को महत्त्व प्रदान नहीं करते हैं। केवल श्रीकृष्ण रस-यशोराशि-विलास-विनोदभाव-कलाभावमें अतिशय निमग्न होकर केवल आवेशमें मधुपान मत्तकी भाँति, श्रीकृष्णभिन्न समस्त वस्तु विस्मृतके समानदिखाई पड़ते हैं, अपने लिए धर्मकर्म उनके हृदय में प्रवेशही नहीं करतेहैं। निरन्तर कृष्ण चरित्रको कहते हैं, गाते हैं सुनते हैं, ध्यान करते हैं। नृत्यभी करते हैं कृष्णभावविभावित हृदय होने के कारण प्रेम-गाम्भीर्य-उन्माद-अश्रु-पुलक-कम्प-मूर्च्छासिंह

शोक-निर्मलसकल-जन-प्रीतिर्निरन्तरंकृष्णसंसारनिर्वाहादिभि रानन्दमयविग्रहः कदाचित् आत्मानमपि न जानाति कि मन्यद्वाब्रूमः ।

तथानिरपेक्षभक्तजन ईदृशभक्तिमानपि तद्गुणानुसारेण तदेवचरित्रमनुकरोति । पुनरेतदेवकृतंकर्मस्वयंतत्वेन न जानाति । श्रीकृष्णस्वभावञ्च न त्यजति, यथा श्रीभगवद् गीतायां(२।५६)दुःखेष्वनुद्विग्नमनाःसुखेषुविगतस्पृहः। इति।

अपक्वयोगीतुपक्वयोगीकर्मानुसारेणसकलंकर्मकरोति । कदाचित्तत् सुखमपिलभते । किन्तुदृष्टान्तेन कर्मकरोति, । तच्छक्तिमान्न भवति । अतःसुखेपतन् विभेति, दुःखेपतन्नु द्विजते,प्रेमप्रागलभ्यञ्च न लभते। कदाचिद् दम्पतिभावाविष्ट मतिर्विषये पतति, तामाकर्षितुं न शक्नोति, अतस्तदा

नाद-हास्य-रोदन,चित्तप्रसाद-शोक-निर्मल-सकल जन प्रीति,निरन्तर कृष्णसंसार निर्वाह प्रभृति कार्यद्वारा आनन्दमयविग्रह होकर कभी आपने आपको भी जानपाते हैं अपर क्या बोलेंगे ।

निरपेक्ष भक्तजन उस प्रकार भक्तिमान होकरभी उनके गुणके अनुसार उनके चरित्रका अनुकरण करते हैं। येसब कर्मका अनुष्ठान करके भी स्वयं तत्वसे उसको नहीं जानते हैं। श्रीकृष्णस्वभाव को परित्याग नहींकरते हैं। जिसप्रकार श्रीभगवद्गीतामें कथित है दुःख से उद्विग्नमानस नहीं होताहैं और सुखके प्रतिभी स्पृहानहीं रखते हैं।

अपक्वयोगी किन्तु पक्वयोगीके कर्मके अनुसारही सकल कर्म करतेरहते हैं। कदाचित उससे सुखभी प्राप्तकरलेते हैं। किन्तु दृष्टान्त से ही कर्म करते हैं,शक्तिमान नहीं होते हैं। अतएव सुखमें पड़नेसेभीत

सक्तिञ्च लभते। आसक्तस्य च कदाचित् पथः स्खलनं स्यात्। एतदेवापक्वयोगिनां महतीक्षतिःस्यात्। किन्तुस्खलि तस्यापि कालान्तरेसैव भक्तिःसमुदेति। तच्चप्रभोर्गुण वैभवात् स्यान्महतां दर्शनात्। पश्यपश्य ! यथायस्य क्षुधाशक्तिस्तदनु रूपमेव भोजनं पथ्यं च स्यात्, बलञ्च विदधाति,श्रियञ्च

होते हैं और दुःखमें पड़नेसे उद्वेगप्राप्त करते हैं, प्रेमकी विपुलता को प्राप्तनहीं करतेहैं श्रीराधाकृष्णकी रहस्यलीला आलिङ्गन चुम्बन आदि में ग्राम्य शृङ्गारकीसमता पूर्णांशमेंरहने के कारण उसका चिन्तनकरते करते स्वयंकृष्णवन जातेहैं,और दाम्पत्यभावकी ओर चित्तकीअविरल धारा चलतीरहतीहै। प्रत्येक अपक्वयोगी श्रीराधाकृष्णकी अष्टकालीन लीलाके अभ्याससे चरित्रहीन होजाते हैं। आचार्यका निषेध है,पुरुषा यितविकारयुक्त हृदयसे श्रीराधाकृष्णकी रहोलीलाका चिन्तन न करे पतन अनिवार्यहै,कृष्णभजनके हेतु आरम्भकार्यसे उसका भीषण पतन हो जाताहै ! वह सामाजिक साधुवन जाताहै, ग्राम्यशृङ्गारमें आसक्त मतिको वहआकर्षण कर कृष्णचिन्तनमें रत करही नहीं सकता अतएव अवैध दाम्पत्य धर्ममें प्रगाढ़ आसक्तिको प्राप्त करलेताहै। आसक्तसे पदस्खलन होताही है। यहही अपक्वयोगीकी महती क्षति है। किन्तु धर्ममार्गसे स्खलित व्यक्ति भी कालान्तरमें भक्ति प्राप्तकर सकता है। वहभी श्रीप्रभुकेगुण वैभवसेही सम्भव है,अथवा महत् जनके दर्शनहोने पर दुःसङ्गका त्याग होताहै और सत्सङ्गमें मतिहोती है। देखो देखो! जिसकी जैसी क्षुधाशक्ति भोजन पचानेकी शक्तिहै, उसके अनुरूप भोजनही उसका पथ्यहोगा बलभी बढ़ेगा ओर कान्ति आदिकीभी पुष्टि होगी,अन्यथा अल्पक्षुधामें पचानेकी शक्ति थोड़ी हो,और बहुतर क्षुधा वालेका पहलवानका भोजन उस बुध जनको दिया जायतो उसकी शक्ति चली जायगी, और अपने आपको उसका शरीर वहन करमें

पुष्णाति, अन्यथा अल्पक्षुधयां बहुतरक्षुधावतांभोजनसम भोजने कश्चिद् बुधोजनः सामर्थ्यं न लभते । तस्मात् तद्देहमपिनिरन्तरंभक्तियोगमिव निजंवोढ़ंन शक्तः। तस्माद् अपक्वयोगी दिनेदिने भक्तिर्विध्वंसाद् विषयरस लालसा ल्लक्षणीयः ॥

तथाचपक्वयोगीदृष्टान्तेन केचिद्वेशधारिणः कृष्णभक्ति निदर्शनमात्रम्, हरिकीर्त्तनकपटेननानासुखविलासम्, पक्व योगीप्रायंस्वेच्छाविहारञ्च प्रकटयन्तःसर्वान् प्राकृतजनान् भ्रामयन्ति । किन्तु, येनैव कपटसुखविलासविनोदेन लोकान् भ्रामयन्ति, तेनैवविलासादिविशेषेण तानेव वेशधारिणो

वह असमर्थ होगा, इस प्रकार उसकी मति निरन्तर भक्तियोग को वहन करनेमें असमर्थ होगी । अतउव अपक्वयोगीकी भक्तिक्षय दिन दिन होतीरहेगी, भक्तिनाश होनेके कारण निरन्तर विषयरसलालसाबढ़ती जायगी, इसलक्षण से ही अपक्वयोगीका पहचान करे ।

कुछ व्यक्ति परिपक्वव्यक्तिके दृष्टान्त से अनेक वेश धारण मात्र करते हैं, वेलीक कृष्णभक्तिका कृत्रिम उदाहरण हैं, हरिकीर्त्तन के छल कपटसे अनेकानेक सुखविलास को प्राप्त करलेते हैं, पक्वयोगीके समान स्वेच्छा विहार का प्रकटकर मूढ़ विषयी लालुप आदि सकल प्राकृत जनको भ्रमित करते रहते हैं । किन्तु जिस कपट सुख विलास विनोदके द्वारा लोकोंको भ्रमित करते हैं, उसी विलास विशेषके द्वारा साधुवेशधारी सज्जनगण प्राकृतमुग्धजनको ग्रास करतेहै, निरन्तर उसी विषयरससे विषयीसे भी विषयी ही जाते हैं, वैष्णवता उन सबके निकट में नहीं आती है मूर्खकामी विषयी लम्पटआदि कुग्रामवासी प्राकृतजनगण के आश्रय होतेहैं एवं प्राकृत जनगण का ही सङ्ग वे सदा

ग्रसन्ति । निरन्तरं तेनैवविषयरसेनविषयिणामपि विषयिणो भवन्ति, वैष्णवाभिजात्येन तेषामन्तिकंनगच्छन्ति, कुग्राम वासिनां प्राकृतानामेवाश्रय भजन्ते, प्राकृतजनानामेव सङ्गं कुर्वन्ति । कदाचित् कृष्णगुणमहिम्ना विनैवानुरागेण पुलक-प्रेमादिकं वाह्यरसेन नर्त्तकानामिवजायते । तदपि दिनेदिने विनाशंयास्यति । वैष्णवानाञ्चतेगर्हिताभविष्यन्ति । तस्माद् वैष्णवसङ्गालापादि-विमुखानां यानि सङ्गान्तराणि तानि विष्णुभक्तदूषणानि । एतेनवाह्य-भूषणभूषिता अपिगतश्रीकाः सत्सङ्गहीनाः सर्वैरेव दूषणीयाः, सर्वैरेव लक्षितव्याः । इति परीक्षा ।

एतेन तु केवलं ये चतुरा गभीरभागवतास्ते तामेवप्रीतिमन्वेष यन्तो लोकेच्च सर्वंबोधयिष्यन्ति । तस्याएव प्रेमारम्भः स्फुट

करते हैं । कदाचित् कृष्णगुण महिमा श्रवण वर्णन आदि समय में अनुरागके विनाही जन रञ्जन के कपट अभ्यास ही पुलक-प्रेम प्रभृत्ति का प्रदर्शन वाह्यभावसे नर्त्तकके समान करते रहतेहैं । वैसाप्रेमप्रदर्शन भी स्थायी नहीं होगा, दिन दिनमें विनाश प्राप्त होगा । वैष्णवों की दृष्टिमें वेसब अत्यन्तनिन्दनीय होंगे । अतएव वैष्णव सङ्ग-आलापादि विमुख जनोंके जो सब सङ्ग हैं, वेसब ही विष्णुभक्तके लिये दोषावह हैं । इससे तात्पर्य निकला कि वाहर साधुजनोचित भुषणसे भूषित होने परभी विष्णुभक्ति वर्जित सत्सङ्गहीन व्यक्तिगण सर्वथा दुष्ट है, इस लक्षणके द्वारा सकल जनही साधुओं को पहचान कर सम्मान प्रदान करेंगे साधुपरीक्षा प्रकरण समाप्त हुआ ।

इससे सारार्थ यह हुआ कि जो जन सुचतुर गभीर भागवत् उन

मस्त्येव। तस्मादवतारे संहृत इतिचित्तदौर्बल्यंत्यक्तुमर्हन्ति। यतःश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रःप्रीति प्रेमविग्रहः। यदि प्रीति प्रेमाऽर्हपित स्तर्हि अवतारेश–भक्तिरप्यस्त्येव।

तथाचाङ्गसङ्गिनो महान्तः केवलमेतत् कारणमुद्दिश्यैव सर्वप्राणि निस्तारेऽत्र यन्निःसीमदुःखं तद्विरहजं मरणादप्यधिकं क्लेशेन सहमानाअपिहरि कीर्त्तनंहरिसेवां सत्सङ्गं महाजन-पूजां सर्वेषु प्रीतिं प्रेमाणञ्चबोधयन्तःकेवलं धरणीमण्डले निजप्रभोर्यशो राशि-विलासविनोदकलाञ्च कालेकाले उत्सन्नामेव स्वयंमृताः खसन्तइव निजदैहिकसुखं वह्नौ निक्षिप्य स्थापयिस्यन्ति। तथाहि–

कृष्ण प्रीति को ही ढूढ़ेंगे और लोकों को उसका ही संवाद प्रदानकर ग्रहण करायेंगे। उस श्रीकृष्ण प्रीतिसे सेही परिस्फुट कृष्णप्रेमारम्भ होता है। अतएव अवतार लीला संगोपन करने पर वैष्णवोमें मूर्ख आचरण होगा। इस प्रकार संवादसे चित्तको दुर्बल करना नहीं चाहिये। कारण श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र प्रीति प्रेमविग्रह हैं, यदि प्रीति प्रेम उनके प्रति सत्यरूपसे अर्पित होवे तो अवश्य ही उनके प्रति शुद्धा व्रजभक्ति अवश्य ही होगी।

इसलिए आद्यमहाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेव के सहचर महान्तगण सकलप्राणी निस्तारके लिए प्रभु विरह दुःख मरणसे भी अधिक निःसीम है, क्लेशसे भी उसको सहते हुये हरिकीर्त्तन सत्सङ्गमहाजन पूजा,सेवकके प्रति प्रीति-प्रेम अपरको शिखाने के लिए उनसब का यथा आचरण करते हैं। निज दैहिक सुखको वह्निमें डालकर मृतके समान स्वयं सहिष्णु निरभिमान होकर काल कालमें धरणी मण्डलसे श्रीप्रभु की यशोराशि-विनोद कलाविलुप्त न हो इसलिए समुचित प्रयत्न करते

२९। स्वदुःखैः परदुःखानि नाशयन्ति महाजनाः।
परार्थएव साधूनां विभूतिर्जीवनं सुखम् ॥
तथाचश्रीमद्भागवते (१०।४८।३०)
३०। भवद् विधा महाभागानिषेव्या अर्हसत्तमाः।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्य देवाः स्वार्था न साधवः ॥

तस्मात् सर्वेसावधाना यत्रयत्रप्रीति लालसाः यत्रयत्र कृष्णकथाप्रसङ्गः यत्रयत्रहरिकीर्त्तनम्, यत्रयत्रहरियशोवर्णने शुश्रूषा, यत्रयत्रकृष्णस्य वैष्णवस्यचप्रसङ्गे साधुवादः, तत्र तत्रैव तत्परा भवन्तु, सर्वत्रप्रीतिकुर्वन्तु। तदेवदिनेदिने सर्वं सुसम्पन्नं भविष्यन्ति। केवलं प्रीतिः प्रेमैव प्रभोरस्त्रम्। तद्यदि समुदेति. तदासर्वेऽसुखिनोऽपि सुखिनोभवन्ति, शोचितुं नार्हन्ति ॥

है कारण,–महाजनगण निजदुःख वरणकर अपरके दुःखों का विनाश करते हैं, साधुओं के जीवन,सुख एवं विभूति दुसरेके उपकार के लिए ही होते हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखित है (१०।४८।७०) ॥

आपके समान भाग्यवान् सर्वथा माननीय व्यक्तिके सेवा श्रेयस्कामी व्यक्तिको नित्यकरनी चाहिये,कारण देवतागण स्वार्थ परायण होते हैं, किन्तु साधुगण कभी भी स्वार्थ परायण नहीं होते हैं।

अतएव सकल व्यक्तिके लिए ही सावधान होना एकान्त आवश्यक है, जहाँ जहाँपर अन्याभिलाष वर्जित शुद्धकृष्ण प्रीति लालसा है, जहाँ जहाँ शुद्धकृष्णभक्तिके लिए ही कृष्णकथा प्रसङ्ग है, जहाँ जहाँ श्रीकृष्णभक्तिके लिएही श्रीहरिकीर्त्तन है जहाँजहाँ श्रीहरिभक्तिके लिए ही श्रीहरियशवर्णणकी श्रवणेच्छा है,जहाँ जहाँ कृष्ण एवं वैष्णवों के

३१। शाखासहस्र वेदेऽस्मिन्नैकशाखाप्रभोः प्रिया।
सत्फलंप्रीतिरेवास्यततः किनास्तिभूतले ?
३२। प्रीतिः प्रार्थ्यासतामग्रे प्रीतिप्रार्थ्यामहाजने।
प्रीतिरारोपणीयास्वेहृदिप्रीतिंनिबोधय ॥
३३। जगद्धनंकृष्णएववैष्णवास्तदुपाधिकाः।
प्रेमप्रीतिस्ततोऽप्यग्रचापरंप्रीतेर्नकिञ्चन ॥
३४। अरुणाम्भोजचरणेश्रीचैतन्यमहाप्रभोः।
मनोवाक्कायजंप्रेमवर्धतांमेदिनेदिने ॥

प्रसङ्गमें महत्त्व पोषण होता है, वहाँ वहाँपरहीं निष्कपटतासे तत्पर होना आवश्यक है, उक्तस्थानोंमें प्रीति करे, तबही दिन दिन भक्तिके पथपर चित्तवृत्ति अग्रसर होगी। केवल प्रीति, केवल प्रेमही प्रभुका अस्त्र है, वह प्रेम एवं प्रीति यदि चित्तमें सम्यक् रूपसे उदित होते हैं, तब सकल असुखी व्यक्ति भी सुखी होंगे इस विषयमें संशय की सम्भावना ही नहीं है।

वेदमें सहस्र शाखायें हैं किन्तु प्रभु श्रीकृष्णके प्रिय एकभी शाखा नहीं है, उनसब शाखा के एक सत्फल कृष्णप्रीति है, वह ही प्रभुके प्रिय है, धरणीमें उस अलभ्यलाभ की प्राप्ति अनायास होती है, अतएव मूलमें क्या नहीं हैं ? ॥३१॥

सज्जनोंके समक्ष प्रीति की प्रार्थना करनी चाहिये, महत्जनों के प्रति प्रीति हो, यही प्रार्थना सदा करनी चाहिये। अपने हृदय में श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्ण सम्बन्धि वस्तुके प्रति अविचला प्रीतिका स्थापन करना एकान्त कर्त्तव्य है प्रीतिको जानो एवं जाग्रत करो ॥३२॥

जगद्के धन सम्पत्ति एकमात्र श्रीकृष्णही हैं, वैष्णवजनसे भी अधिक प्रीतिपात्र एवं मूल्यवान् वस्तु हैं, कृष्णप्रेम एवं प्रीति सबसे अधिक

३५ । वैष्णवेप्रीतिरास्तांमे प्रीतिरास्तां प्रभोर्गुणे ।
सेवायां प्रीतिरास्तां प्रीति रार्त्तिश्च कीर्त्तने ॥

३६ । आश्रिते प्रीतिरास्तांमेप्रीतिश्च भजनोन्मुखे ।
आत्मनि प्रीतिरास्तांमेकृष्णेभक्तिर्यथाभवेत् ॥

इतिश्रीमन्नरहरि-मुखोदितं श्रीकृष्णभजनामृतं समाप्तम् ॥

महत्त्व की वस्तु है, प्रीतिके आगे और कोई भी पदार्थ नहीं हैं ॥३३॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अरुणचरण कमलों में मन बाणी देहसे दिनोंदिन प्रेमकी वृद्धि हो ॥३४॥

मेरी प्रीति वैष्णवोंके प्रति हो, श्रीप्रभुके गुणोंके प्रतिप्रीति हो, उनकी सेवामें प्रीतिहो,श्रीहरिकीर्त्तन में मेरीप्रीति एवं आर्त्ति हो ।३५

आश्रित जनोंके प्रति मेरी प्रीति हो,श्रीकृष्ण भजनोन्मुख व्यक्ति के प्रति मेरी प्रीति हो एवं परमप्रिय श्रीकृष्ण के प्रति मेरी प्रीति हो और उनके चरणारविन्दों में जैसे अविचला भक्ति हो ॥३६॥

श्रीमन्नरहरिमुखोदित श्रीकृष्णभजनामृतम् समाप्त ।

श्रीहरेः पाददासेनवृन्दावननिवासिना ।
व्याखयातं लोकभारत्याश्रीकृष्णभजनामृतम् ॥
भाद्रेमासिसितेपक्षेद्वादश्यांगुरुवासरे ।
शास्त्रिणाहरिदासेनग्रन्थस्यलेखनंकृतम् ॥ १५-९-७८

❋ श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ विजयेताम् ❋

विज्ञप्तिः

श्रीश्रीगौरगदाधर देवकी अपार करुणासे श्रीनिवासाचार्य प्रभुकृत श्रीमद्भागवतीय चतुःश्लोकी (२।९।३०-३५) भाष्यग्रन्थ श्रीभागवतगणके करकमल में समर्पित हुआ। यह चतुःश्लोकी ब्रह्माको शिक्षाप्रदान करनेके छलसे श्रीकृष्णकी मुखनिःसृतवाणी एवं श्रीमद्भागवतके मूलसूत्र हैं, यह श्लोक चतुष्टयके अवलम्बन सेही अष्टादश साहस्री की प्रवृत्ति है। इससे किसप्रकार समग्र श्रीमद्भागवतके दशलक्षणान्वित अर्थ संग्रह हो सकता है ? इसके उत्तर इसप्रकार है-मैही पहले, (सृष्टिके पहले अथवा सर्वधाम चूड़ामणि श्रीगोलकमें) था, इस वाक्यसे सर्वकारण कारण श्रीमद्भागवत प्रतिपाद्य आश्रय तत्त्व उक्त हुआ एवं इससे ही द्वादशस्कन्धका अर्थसंग्रह हुआ। पश्चात् भी मैं इस इस उक्ति द्वारा पुरुष प्रधानादि सकल विषय उक्त हुआ। एवं इससे द्वितीय एवं तृतीय स्कन्धका अर्थसंग्रह हुआ। परिदृश्यमान् जो कुछ (जगत्) इस वाक्य से विसर्ग, स्थान, ऊति, मन्वन्तर, एवं ईशानुकथा कथित हुआ। कार्यभूत यहजगत् मैंही-यहही उक्त वाक्यका अर्थ हैं, सुतरां इससे चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, अष्टम, नवम स्कन्धके अर्थसङ्कुचित हुआ है, (तत् पश्चात् जो कुछ अवशिष्ट रहा), वहभी मेंही इस वाक्य से निरोध कहा गयाहै एवं इससे दशम स्कन्धका अर्थ उपसंग्रह हुआ है। 'अर्थव्यतीत' इत्यादि भागवतीय वाक्यसे मायाका प्रस्ताव, मायाके साहाय्यसे जगत्सृष्टि प्रभृति, जीवका संसार, जीवेश्वरविभाग कहा गया है। यह सब विषयसमूह समग्र ग्रन्थमें अवसरानुसार उपाख्यान द्वारा सूचित हुआ है, इससे प्रथम स्कन्धका अर्थ संग्रह हुआ है। जैसे महाभूत समूह इत्यादि वाक्यद्वारा 'पोषण कहागया है, एवं षष्ठ स्कन्धका अर्थसंग्रह उक्तहुआ। यहही जिज्ञासा करें इत्यादि वाक्यसे साधनकी सूचना से मुक्ति कहीगई है। एवं इससे एकादश स्कन्धका अर्थका समावेशभी हुआ है। चतुःश्लोकी में सम्बन्ध, अभिधेय एवं

प्रयोजनतत्त्वही निरूपित हुआ है श्रीचैतन्य चरितामृत मध्य (२५।१००-१२३)

भागवतेर सम्बध, अभिधेय प्रयोजन ।
चतुःश्लोकीते प्रकटतार करियाछे लक्षण ॥
आमि-सम्बध तत्त्व, आमार ज्ञान विज्ञान ।
आमापाइते साधन भक्ति-अभिधेय नाम ॥
साधनेर फलप्रेम-मूल प्रयोजन ।
सेइ प्रेमे पायजीव आमार सेवन ॥
एइतान अर्थ आमि कहिनु तोमारे ।
जीव तुमि एइ तीन नारिबे जानिवारे ॥
जैछे आमार स्वरूप जैछे आमार स्थिति ।
जैछे आमार गुण, कम षड़ैश्वर्य शक्ति ॥
आमार कृपाय एइसब स्फुरुक तोमारे ।
एत बलि तिन तत्त्व कहिला ताँहारे ॥
सृष्टिर पूर्वे षड़ैश्वर्य पूर्णआमि त हइये ।
प्रपञ्च प्रकृति पुरुष आमातेइ लये ॥
सृष्टि करि तार मध्ये आमित वसिये ।
प्रपञ्च ये देख सेह आमि हइये ॥
प्रलये अवशिष्ट आमि पूर्ण हइये ।
प्राकृत प्रपञ्च पाय आमातेइलये ॥
अहमेव श्लोके अहम्-तिनवार ।
पूर्णैश्वर्य विग्रहेर स्थितिर निर्धार ॥

ये विग्रह नाहि माने, निराकार माने ।
तारे तिरस्करिवारे करिला निर्धारणे ।।
एइ शब्दे हय ज्ञान विज्ञान विवेक ।
माया कार्य, मायाहैते आमि–व्यतिरेक ।।
जैछे सूर्येर स्थाने भासये आभास ।
सूर्यविना स्वतः तार ना हय प्रकाश ।।
मायातीत हैले हय आमार अनुभव ।
एइ सम्बन्ध तत्त्व कहिलुँ शुन आरसब ।।
अभिधेय साधन भक्तिर शुनह विचार ।
सर्वजन देश काल दशाते व्याप्ति यार ।।
धर्मादि विषये जैछे ए चारिविचार ।
साधनभक्ति–एइ चारिविचारेर पार ।।
सर्वदेशे काल दशाय जीवेर कर्त्तव्य ।
गुरुपाशे सेइ भक्ति प्रष्टव्य श्रोतव्य ।।
आमाते ये प्रीति, सेइ प्रेम प्रयोजन ।
कार्यद्वारे कहि तार स्वरूप लक्षण ।।
पञ्चभूत जैछे भूतेर भितरे वाहिरे ।
भक्तगणे स्फुरि आमि वाहिरे अन्तरे ।।

प्रस्तुत चतुःश्लोकी भाष्य के भाव, भाषा एवं पदव्याख्यान अति मनोरम है। इसमें 'अहमेव' श्लोक का परं शब्द की व्याख्यामें आपने लिखा है–परं निजगृहिणीषु गोपीषु परकीया भावम् । 'अग्र' शब्द 'से सर्वलोक मुकुटमणौ श्रीगोलोकाख्य' । 'एतावत्'इत्यादि श्लोककी

व्याख्यामें कहे हैं-कृष्णलीलारहस्य स्वकीया परकीया, गोपीषुपरकीया भावादिकं, 'नान्यत्' । 'अन्वयव्यतिरेक प्रभृति शब्द के अर्थसे परमार्त्ति भर से (आनुगत्यसे) श्रीगुरुके अनुगमन सर्वत्र सर्वभजन साधन में अनुसरण, सर्वदा-सर्वकालमें जीवनमें मरण में विपदमें सम्पदमें दूरमें निकटमें दिनादि में निशादि में सङ्कीर्त्तनादि में महाप्रसाद अनुशीलन में इत्यादि लिखकर श्रीगुरुकी आनुगत्यमयी सेवा विधान द्वारा ही श्रीकृष्णलीलारहस्य ज्ञातव्य है ।

श्रीनिवासाचार्य प्रभुकी विस्तृत जीवनी एवं लीलावली भक्ति रत्नाकर प्रेम विलास, कर्णानन्द, अनुरागवल्ली एवं नरोत्तम विलास में विस्तारित भावसे वर्णित है, महामहोपदेशक, आध्यात्मिक शिक्षक वैष्णव वेदान्त एवं साहित्य प्रभृति के महाप्रचारक, वैष्णव महाजनी पदावलीकी उन्नति के लिए उत्साहदाता आचार्य प्रभु कितने प्रकारसे गौड़ीयवैष्णव धर्मका प्रचार एवं प्रसार किये हैं उनकी इयत्ता नहीं, है । श्रीमन्महाप्रभु एकशक्ति द्वारा श्रीरूपसनातनादि से भक्तिशास्त्र प्रणयन कराये थे एवं अन्य शक्ति प्रकटन से श्रीनिवासाचार्य प्रभु द्वारा प्रचार कार्य सम्पादन किये थे ।

हरिदासशास्त्री





※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

※ श्रीश्रीनिवासाचार्य्यप्रभुविरचितम् ※

❀ चतुःश्लोकीभाष्यम् ❀

श्रीभगवानुवाच (भा० २-१०-३० ३६)

श्रीभगवानुवाचेति-भगवन्तो ज्ञानशक्ति वैराग्यैश्वर्य्य-वीर्य्य तेजोवन्त: षड़्गुणयुक्ता: अतएव ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशस: श्रिय:। ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णांभगइतीङ्गना। भगवन्त स्त्रिपाद् विभूतियुक्ता: श्रीवैकुण्ठ नाथादय: पूर्णा:, श्रीकृष्णस्य स्वयं भगवान् चातुष्पादिक-विभूतिमान् श्रीगोपालरूपी पूर्णतम:। तथाहि श्रीगोपाल वाक्यं (ब्रह्माण्डपुराणे) सन्ति भूरीणि रूपाणि मम पूर्णानि षड़्गुणै: भवेयुस्तानि तुल्यानि न मया गोपरूपिणा। अतएव सर्वातिशयानन्त गुणवान् गोलोकधामा एव वक्ता।

ज्ञानं परमगुह्यं मेयद्विज्ञान समन्वितम्।

सरहस्यं तदङ्गञ्चगृहाण गदितं मया ॥ (१)

ज्ञानमित्यादि-मोक्षे धी: ज्ञानं, भक्तौ धी: परमज्ञानं प्रीतौ धी: परमगुह्यज्ञानं, विज्ञानं शिल्पशास्त्रयो:-शिल्पमत्र श्रीविग्रह-त्रिभङ्गि-सुगठन-करचरण-रेखा विन्यासादि। (चरणचिह्नवेषविन्यासादि) शास्त्रमय-श्रीभगवत-गीता-पद्मपुराणादिसात्त्विक-कल्पादि। रहस्य मत्र रासनिकुञ्जमोहनमन्दिर श्रीराधा सम्भोग परमसुखं प्रधानमङ्गि अङ्गमत्र-विभावानुभाव-सात्त्विक-सञ्चारी-सुहृद् रूप सख्यादि-वैरि रूपवत्सलादि-विप्रलम्भ--पूर्वराग--मान-प्रवासादि--दिव्योन्मादचित्र जल्पादि कोटिश्च, च कारादनन्तम्। मया-स्वयं भगवता रसिक शिरो मणिना निगूढ़निजलीला विशारदेन गदितं व्यक्तमुक्तं भरतादिमुनि

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुण कर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥२॥

मानसागोचरत्वादव्यक्तम् । अतएव गृहाण-परमाग्रह पूर्वकं दुर्लभं वस्तु महानिधिवद् धारय इति दिक् ॥ (१)

यावानहं-गोलोकधामा गोपवेशो गोपीपतिः । क प्रति कथयितुमीशे, संप्रति कोवा प्रतीत्ति मायातु । गोपत्ति तनया-कुञ्जे, गोपवधुटी विटं ब्रह्म । (पद्यावली९९) विटश्चोपपतिः स्मृतः । अतः पति एकदेशोपचारः यथाभावोयथोज्ज्वलादिः भावाश्रयः । यद्रूपगुणकर्मकः-श्यामसुन्दरः कोटिकन्दर्प-लावण्य धामा असाधारण गुण चतुष्टय मुरली मोहनत्वा-दिवान्, कर्म-लीलाविनोदी । तथैवेति-निगम निगूढ़त्वात्, निगमकर्त्रेति ब्रह्मणे अतएवआशीर्वादः, तदगोचरत्वादशक्यत्वाच्च । 'गोलोकनाम्नि निजधाम्नि (ब्र० सं ५।४३) 'गोलोक एव निवसति' (ब्र० सं ५-३७) इत्यादि "कृष्णंगोपाल रूपिणम्" (गोतमीय तन्त्रे) "भवेयुस्तानि तुल्यानि न मया गोपरूपिणा" (ब्रह्माण्डपुराणे) "गोपवेशो में पुर-स्ताद् आविर्बभूव" (गोपालतापनीपूर्व २८ इत्यादि) "गोपीजन वल्लभः, स्वामी भवति" (गोपाल तापनी उत्तर) 'कृष्णबध्वः' भा १०।३३।७) वल्लभ्यो मेऽनुशान्तय इत्यादि । अधिष्टातृत्वे "नृसिंहो नन्द नन्दनः" (भक्तिरसामृते २ ४।११९) "शृङ्गार रस सर्वस्वम् (कर्णामृते ९३) जन्माद्यस्य यतः" (भा १।१।१) "शृङ्गार सखिमूर्त्तिमान् इव" गीत गोविन्दे (१।४८ इत्यादि) 'यं श्याम सुन्दरं" ब्र सं ५।३८) "श्याममेव परंरूपं" (पद्यावली८३) इत्यादि कन्दर्पकोटिलावण्यः" (स्तवमालामहानन्द) "कन्दर्प कोटिरम्याय" (स्तवमाला प्रणाम) इत्यादि । "वेणुं क्वणन्त" (ब्र० सं ५-३०) वेणुवाद्यमहोल्लास" (गोत मीयस्तवराजः १३) गोविन्दं कलवेणु वादनपरम् (पद्यावली ४६) इत्यादि । "गोवर्द्धनगिरौ रम्येस्थितं रासरसोत्सुकम्" गौतमीयेस्तव राजः ११) नहि जाने स्मृते रासे मनोमे कीदृशं भवेत्' (वृहद्वामनपु")

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् सदसद् परं ।
पश्चादहं यदेतच्च यो ऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥३॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो माया यथाभासो यथातमः ॥४॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु नतेष्वहम् ॥५॥

अभूदाकुलितो रासः प्रमदाशत कोटिभिः'' रासोत्सवः संप्रवृत्तोगोपी मण्डल मण्डितः (भा० १०।३३।३) "जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डल मण्डिलः (भावार्थदीपिका १०।२६) इत्यादि ॥२॥

अहमेव पूर्वोक्त महानुभावो गोपालरूपी अग्रे-सर्वलोक मुकुट मणि श्रीगोलोकाख्ये आसमेव श्रीरासलीलया विराजमान एवावतिष्ठम् असु दीप्तौ अत्र। नान्यदित्यादि-सत् सद्रक्षार्थमसुर बधादि, असत् प्राकृत दर्शनादि, परं निज गृहिणीषु गोपीषु परकीयाभावम् : तदेवं मद्विना (यत्एतच्च) जगदादि सर्वं के कुर्व्वन्ति ? तत्राह पश्चादहं-सर्वलोकमध्ये मूलाधारे सङ्कर्षण-कमठादि रूपेण, योऽवशिष्येत सर्वं लोकमध्येविलास-पुरुष-गुणावतार-लीलावतारावेश-प्रभाव वैभव-पद्-नाभ-क्षीरोदशायिप्रभृत्यंशकलामग सर्वविधाश्यन्ति, कार्य्यकारण यो रभेदात, परञ्च स्वयम् अह गोकुले सर्वं करिष्यामीति भावः (३)

ननु इममर्थंसर्वेकथं नानुभवन्ति ? तत्राह-ऋतेऽर्थ मिति-एतदेव परम कौतुकं ततां भ्रूक्षेपेण सकलभुवनंनखराग्रे नर्त्तयन्तीम् आत्मनो ममभायां विद्यात, ऋते सत्ये चात्मनि मयिइमम् अर्थं परम पुरुषार्थं रूपं प्रेमाणं यत् यस्याः प्रभावेन न करोति, तत्रः प्रथमपदेनान्वयः। आत्मनि आत्मौपम्येषु स्त्री पुत्रादिषु प्रतीयते करोति च, वैपरीत्ये दृष्टान्तः-यथाभासः घटादिज्ञानं न करोति तमस्तु करोत्येव" ममभायैव तामतिशयेन विद्यात् विद्यामत्तीति ॥४॥

पुनरपि महाशयः आत्मनो विभुत्व-परिच्छिन्नत्वे लीलायाः प्रकटत्वाप्रकटत्वे दृष्टान्तेन निरूपयति यथा महान्तीति-पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशानि विभूनि परिच्छिन्नानिच प्रकटान्य प्रकटानिचः पृथिवी व्यापिका अनन्त कोटि-ब्रह्माण्डात्मिका परिच्छिन्ना लोष्ट्रादि रूपा। जलंव्यापि कारणार्णवरूपं ब्रह्माण्डाधारम् करकादिरूपम् तेजोव्यापि सूक्ष्मं ब्रह्मादिरूप'परिच्छिन्नं दीपशिखादि रूपम्'। वायुर्व्यापी सर्वगतः परिच्छिन्नो वात्यादिरूपः। आकाशंसर्वगतं व्यापि, परिच्छिन्नं घटाकाशादि रूपम्। एवमहं-नचान्तर्न वहिर्यस्य नपूर्व नापि चापरम् (भा० १०।९।१३) इत्यादिना विभुः। बबन्ध प्राकृतं यथा (भा० १०।९।१४) इत्यादिना परिच्छिन्नः। अनन्तकोटिब्रह्माण्डान्तर्यामि तया विभुः द्विभुज-चतुर्भुजादिरूपतया परिच्छिन्नः तथाहि विभुरपि भुजयुग्मोत्सङ्ग पर्य्याप्तमूर्त्तिः" भक्तिरसामृते (२।१।१९८) अचिन्तानन्तशक्तित्वात्। पर पृथिव्याद्यपञ्चीकृतास्तन्मात्रगन्धादिरूपाः प्रविष्टा क्ष्द्रव्याः सूक्ष्म रूपाः योगिप्रत्यक्षाः। अप्रविष्टाश्च स्थूलरूपा पञ्चीकृता मूर्त्तिमत्त्वाञ्च। एवमहं विराड़न्तर्य्यामितया प्रविष्टः द्विभुजादि रूपा प्रविष्टः। तथाच गीतोपनिषदि (विभुत्वे)विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितोजगत् (गीता १०।४२) ईश्वरः सर्वभूतानांहृद्देशे ऽर्जुन तिष्ठति (गीता १८।६१) इत्यादि-मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतांम् तरन्ति ते" (गी० ७।१४) मामप्राप्यैव कौन्तेय (गी० १६।२०) मां कृष्णरूपं परिच्छिन्नम्। परब्रह्मद्वामाहशरीरिणी। आकाशवाण्या दिकमपि श्रूयते तदपरिच्छिन्नस्य। एवं मम लीलाया अपि अपरिच्छिन्नत्व परिच्छिन्नत्वे यथा-सदानन्तैः प्रकाशैः स्वैर्लीलाभिश्च स दीव्यति (लघुभागवतामृते १।७।१५)इत्यत्रानन्त शब्देनापरिच्छिन्नत्वम् गोकुले मथुरायाञ्च द्वारवत्यां ततः क्रमात् भावार्थ दीपिका (१० उपक्रमणिका ६) इत्यनेन परिच्छिन्नत्वम्। क्वचित् प्रकटत्वं क्वचिदप्रकटत्वम् यथा। मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितोहरिः (भा० १०।१।२८) इत्यादिना प्रकट लीलायां द्वारकायां श्रियःपतिः

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्रसर्वदा ॥६॥

स्व जन्मनाचंक्रमणेन चान्वति (भा० १।१०।२६ इति द्वारकावासि वर्त्तमान कालप्रयोगात् गोकुले च अप्रकटनित्यलीलासूच्यते इतिदिक् ।५

तदेवं मधुरेण समापयेत्-एतावदेवेति । आत्मनो मम तत्त्वं पूर्वोक्तं सुगोप्यं सर्वगुह्यतमं परम रहस्यं जिज्ञासुना ज्ञातुमिच्छुना शिष्येण एतावदेव जिज्ञास्यं-पुनः पुनः ज्ञातव्यं, कुतः परम्स्तु ? परम साधन-परमपुरुषार्थ-विचार निपुण श्रीभागवतरक्तरसिकासङ्गसङ्गि प्रसन्नोज्ज्वलचित्त-जीवनीभूत-गोविन्द-पादपद्म-सुधास्वादक-श्रीचैतन्य चन्द्र, चरणाब्ज-चञ्चरीक-श्रीराधापदनखचन्द्रचकोर-श्रीगुरुतः शिक्षणीयं, पूर्वोक्तमेव, श्रीकृष्ण लीला-रहस्यं स्वकीया-परकीया, गोपीषु परकीया-भावादिकं नान्यत् । केन प्रकारेण ? इत्याह-अन्वय व्यतिरेकाभ्याम्-अन्वयेन-अनुगमनेन अनुसेवयेत्यर्थः व्यतिरेकेण-विशिष्टेनअति रेकेण औत्कटेन परमार्त्त्येत्यर्थः । यत् श्रीगुरोरनुगमनं सर्वत्र सर्वभजन साधने अनुसरणं सर्वदा सर्वकालेन जीवने मरणे विपदि सम्पदि दूरे निकटे दिनादौ निशादौ सङ्कीर्त्तनादौ महाप्रसादे अनुशीलने इत्यादि । अतएव तस्मात गुरुं प्रपद्येत (भा० ११।३।२१) इत्यादि । तत्र भागवत धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः (भा० ११।६।२२) गुरुदेव आत्मा दैवतश्च तस्मै श्रीगुरवेनमः, ये मयागुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् । (भा० १०।८०।३३) यथाह ज्ञानदो गुरुः (भा० १०।८०।३२) गुरोरनुग्रहेणैव पूर्णः । हरि गुरुचरणारविन्दयुगलानुशीलनेन "बलवानादरो यस्यन स्याद् गुरुपादाम्बुजे । श्रुतैरप्यस्य सच्छास्त्रैः कृष्णे भक्तिर्न जायते । हरिरेव गुरुर्गुरुरेव हरिः । गुरु कर्णधारम् (भा० ११।२०।१७) गुरुषु नरमतिः (पाद्मे) गुरोरवज्ञा श्रुति शास्त्र निन्दनम् । (पाद्मे) आचार्यं मां विजानीयाद् (भा० ११।१७।२०) इत्यादि । किं बहुना ? नास्ति तत्त्वं गुरो परम् इति दिक् ॥६॥

इति श्रीनिवासाचार्य्य प्रभु विरचिता
श्रीचतुः श्लोकी व्याख्या समाप्ता ॥

श्रीभगवान् बोले-जिन में ज्ञान, शक्ति वैराग्यऐश्वर्य्य वीर्य्य तोजो रूप छै गुण हैं उनको भगवान् कहा जाता है। त्रिपादविभूति युक्त श्रीवैकुण्ठनाथादि श्रीभगवान् रूपी अवतारगणपूर्ण श्रीकृष्णकिन्तु स्वयं भगवान्। चतुष्पाद विभूति सम्पन्न श्रीगोपालरूपी एवं पूर्णतम ब्रह्माण्डपुराण में श्रीगोपालदेवने कहा है-मेरा पूर्ण षड् गुणयुक्त बहु-विध प्रकाश है, किन्तु मेरा गोपरूप के साथ किसी की तुलना नहीं हैं। अतएव यहाँपर सर्वोर्द्धवशायी अनन्त-गुणमय गोलोकवासी श्रीहरि ही वक्ता है, मोक्षविषयिणी बुद्धिको ज्ञान, भक्ति विषयिणी बुद्धि को परम ज्ञान, प्रीति विषयिणी बुद्धिको परम गुह्यज्ञान कहा जाता है।

विज्ञान शब्द से शिल्प शास्त्र विषयक अनुभव ही गृहीत होता हैं, यहाँपर शिल्प शब्द से श्रीविग्रह के त्रिभङ्गिम सुगठन् करचरण प्रभृति की रेखाविन्यासादि जानना होगा। एवं शास्त्र भी श्रीमद्-भागवत, गीता, पद्मपुराणादि एवं सात्त्विक कल्पादि जानना होगा।

रहस्य शब्द से यहाँपर निकुञ्ज में मोहन मन्दिर प्रभृति में श्रीराधा के साथ संभोगादि सुखानुभूति-प्रधान एवं अङ्गी है।

अङ्ग शब्द से विभाव (आलम्बन उद्दीपन) अनुभव (चित्तस्थित भावोंका अववोधक नृत्य, गान, हूँकार, जृम्भाइत्यादि) सात्त्विक (अश्रु कम्पादि) व्यभिचारी (त्रास, शङ्का, श्रमादि,) सुहृद् रूप से सख्यादि, शत्रुरूपमें वत्सलादि रस, पूर्वराग, मान, प्रवास दिव्योन्माद् चित्र जल्पादि अनन्त व्यापार ही ग्रहणीय है।

स्वयं भगवान् रसिक शिरोमणि निगूढ़ लीला विशारद मैं ही तुम्हें यह सब तत्त्व कहता हूँ, यह किन्तु नारदादि मुनिगण की मनो वृत्तिके अगोचर होने के कारण अवतक अस्फुट ही रही, तथापि मैं तुम्हें कृपापूर्वक स्पष्टतः कहता हूँ। हे ब्रह्मन्! तुम इस तत्त्वको महा निधि की भांती मन में परमाग्रह के साथ अवधारण करो ॥१॥

मेरी कृपा से तुम्हारी मेरे सम्बधीय सर्वप्रकार तत्त्व ज्ञान की स्फूर्त्ति होगी। श्लोकस्थ यावानहं शब्द मेरा स्वरूप का प्रकाशक हैं मैं गोलोक धामवासी, गोपवेश एवं गोपीपति हूँ। गोपीपति शब्द से गोपी गण के उपपति ही जानना होगा। यथाभाव: शब्द द्वारा उज्ज्वलादि विविध भावका आश्रय का बोध होता है। "यद्रूप गुण कर्मक:" शब्द का "रूप" शब्दसे श्यामसुन्दर कोटि कन्दर्प लावण्यमय विग्रहादि ध्वनित है, गुण शब्द से असाधारण गुणचतुष्टय(लीला, प्रेम, रूप, वेणु माधुरी,) जानना होगा, एवं कर्म शब्द-रासलीलादि विनोद का ही वाचक है ये सब तत्त्व निगम-निगूढ़ होनेके कारण निगमकर्त्ता ब्रह्मा का भी अगोचर एवं दुर्बोध्य है, इसलिए उनको आशीर्वाद देने की आवश्यकता है।२।

मैं ही (पूर्वोक्त महानुभव गोपालरूपी) अग्रे-अर्थात् सर्व लोक चूड़ामणि श्रीगोलोक नामक धाममें श्रीरासलीला में विराजमान था। इस समय अपर सदसत्पर कार्य्यादि कुछ भी नहीं था। श्लोक में सत् शब्दसे साधुजन की रक्षाके लिए असुर बधादि, 'असत्' शब्दसे प्राकृत दर्शनादि, एवं (पर)शब्दसे निज गृहिणी गोपीगण में परकीयाभाव ही ग्रहणीय है।

प्रश्न हो सकता है कि श्रीहरि सर्वदा नित्यरूप में गोलोकीय रासलीला में निमग्न रहते हैं, तबजगदादि सृष्टि स्थितिलयकार्य्यादि कानिर्वाह कोन करता है? उत्तर में कहते हैं—जो में सर्वलोक मूलमें मूलाधार पाताल में सङ्कर्षण-कच्छपादि रूप में रहकर पृथिवी का धारण करता हूं। गोलोक एवं पातालके मध्यवर्त्ती अवशिष्ट अन्यान्य यावतीय लोक मध्यमें भी मैं ही विलास पुरुष, गुणावतार, लीलावतार प्राभव वैभव, पद्मनाभ क्षीरोदशायी प्रभृति में अंश कलारूप में अवस्थित होकर सकल कार्य्य समाधान करता रहता हूँ। (तात्पर्य्य यह है कि कार्य्य एवं कारण वेदान्तमत में अभिन्न होने के कारण विलासादि द्वारा जो सब कार्य्य सम्पन्न होता है उसमें भी स्वयं

भगवान् की ही शक्ति की प्रेरणा होनेके कारण भगवान ही मुख्य कर्त्ता हैं, अन्यान्य सकल ही गौण अथवा प्रयोज्य कर्त्ता हैं ॥३॥

यहांपर जिज्ञासा हो सकती है कि-येसव तत्त्व का अनुभवसव व्यक्ति क्यों नहीं करते हैं, ? उत्तर में कहते हैं-वह ही परम कौतुक है, इसको मेरी माया का प्रभाव जानना होगा, मायाका स्वरूप निर्द्देश करते है-जो भ्रूक्षेप द्वारा चतुर्दश भुवन को नखराग्र में नचाती रहती है वह ही मेरी माया हैं, उसका कार्य-सत्य स्वरूप परमात्मा मुझ में परम पुरुषार्थरूप प्रेम न कराना एवं असत्य स्वरूप आत्म तुल्य स्त्री पुत्र प्रभृति में प्रेम स्थापन कराना है। इस प्रकार वैपरीत्य का दृष्टान्त चिन्मय वस्तु का आभास से घटादि ज्ञानकी बाधा होती है, अर्थात् यत्र तत्र इष्टवस्तुकी स्फूर्त्ति होते रहने से घटपटादि वस्तु की पृथक् पृथक् सत्ताका अनुभव नहीं होता है, अथच चिन्मय वस्तु में अज्ञान रहने पर ही उक्त उक्त घट पटादि ज्ञान का साधन वनता है अर्थात् इष्टवस्तु विषयक अज्ञानही घट पटादि पृथक् पृथक् वस्तुका अस्तित्व उत्पन्न करता है। मेरी यह माया ही विद्या को सम्यक् प्रकार से आच्छादन करके रखती है ॥४॥

पुनर्वार महाशय (श्रीकृष्ण) निजस्वरूप का विभुत्व, परिच्छन्नत्व एवं लीला का प्रकटत्व—अप्रकटत्व विषय समूह का सदृष्टान्तनिरूपण कर रहे हैं,-पृथिवी जल, तेज वायु आकाश प्रभृति पञ्चमहाभूत युगपत् विभु एव परिच्छिन्ना-प्रकट-अप्रकट रूप में विराजित हैं, ।

विभुरूपमें पृथिवी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड व्यापिनी अथच लोष्ट्रादि रूपमें परिच्छिना, विभुरूप में जल कारण-समुद्र ब्रह्माण्डाधार अथच करकादि रूपमें परिच्छिन्न, अग्नि-विभुरूप में सूक्ष्म, ब्रह्म प्रभृति स्वरूप एवं दीपशिखादि रूपमें परिच्छिन्न, वायु सर्वगत होकर भी व्यापी एवं वाय्यादि रूपमें परिच्छिन्न, आकाश भी सर्वगत होकर व्यापी अथच घटाकाशादिरूपमें परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) तद्रूप में भी

विभु-इसविषय में (भा० १०-९-१३) जिनका अन्तर्वाह्य नहीं है अर्थात् जो सर्वदेश व्यापक एवं जिनका पूर्वपरवर्त्ती काल विभाग नहीं होता है अर्थात् सब काल व्यापी इत्यादि।

विभुत्व होकर भी मैं परिच्छिन्न हो जाता हूँ-इसका प्रमाण (भा० १०।९-१४) मा यशोदा जिनको प्राकृत बालकवत् बन्धनकिये हैं इत्यादि। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके अन्तर्य्यामीरूपमें मैं विभु(असीम) द्विभुज-चतुर्भुजादि स्वरूप में परिच्छिन्न (असीम) भक्तिरसामृतसिन्धु (२।१।१९८) विभु होनेपर भी जो माताके भुजद्वय मध्यवर्त्ती क्रोड़में पर्य्याप्त (पूर्ण) रूपमें प्रकाशित हैं। असीमत्व होने पर भी ससीमत्व उनकी अचिन्त्य अनन्तशक्तिसे ही साध्य है।

दूसरी ओर पृथिव्यादि पञ्चभूत जब अपञ्चीकृत (अविमिश्रित) अवस्था में तन्मात्र गन्धादि रूपमें रहते हैं तब वे सब प्रविष्ट अर्थात् सूक्ष्म रूपमें रहते हैं इस प्रकार साधारण लोक न जानने पर भी योगि गण जानते हैं, वे सब पञ्चीकृत (मिश्रित) अवस्था में प्रकाशित होकर जब मूर्त्ति धारण करते हैं, तब वे सब अप्रविष्ट दृष्ट होते हैं तद्रूप श्रीभगवान भी विराट् पुरुष का अन्तर्य्यामी स्वरूप में प्रविष्ट (अदृश्य) अथच द्विभुजत्वादि रूप में अप्रविष्ट (दृश्य) है।

विभुत्व का प्रमाण(गीता १०।४१) मैं समग्र जगत् व्याप्त होकर हूँ, मेरा एकांश में जगत् की स्थिति होती है, इत्यादि। परिच्छिन्नत्व का प्रमाण-मेरी शरणापन्न होनेपर यहमाया का पार सम्भव है,मैं शब्द कृष्णरूपमें परिच्छिन्न मूर्त्ति को जानना होगा।

देववाणी का उल्लेख भी अपरिच्छिन्नत्वका प्रमाण है, इस प्रकार भगवान की लीला का भी अपरिच्छिन्नत्व- हैं। असीमत्वका प्रमाण लघुभागवतामृत में-श्रीकृष्ण नित्य काल अनन्त प्रकाश में असाधारण लीलाविनोद करते हैं, यहांपर अनन्त शब्द लीलाकी असीमता का वाचक है, आप गोकुल, मथुरा द्वारकामें क्रमश

लीला विस्तार करते हैं भावार्थ दीपिका का प्रमाणानुसार लीला की परिच्छिन्नताभी स्पष्ट हैं।

कहीं पर प्रकटत्व अन्यत्र अप्रकटत्व तत्काल में जानना होगा। श्रीमद्भागवत (१०।१।२८) में मथुरा में श्रीभगवान् नित्य विराजमान् हैं इस वचन से मथुरा में नित्य विराजमानतासे द्वारकामें (गोकुलमें) अप्रकट प्रकाशमें नित्यलीला की सूचना होती है,।

श्रीकृष्ण का द्वारका में अवस्थान के समय भी द्वारकावासि गण की उक्ति में (यह श्रीपति कृष्ण जन्मग्रहण कर यदुवंश को, लीला विनोद के द्वारा मधुपुरी को धन्यकर रहे हैं,) यहाँपर वर्त्तमान काल का प्रयोग से गोकुल में भी अप्रकट लीलाका इङ्गित होता है, सुतरां स्वीकार करना होगा कि श्रीकृष्ण की लीलामात्र ही नित्य है, एकत्र आविर्भाव होनेपर अन्यत्र अप्रकट में सजातीय लीलाविनोद नित्य काल ही होता रहता हैं ।।५।।

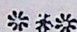
सम्प्रति मधुररूप से प्रसङ्ग का समापन करते हैं. मेरा (श्रीकृष्ण का) पूर्वोक्त सुगाप्य परमगुह्यतम परम रहस्य तत्त्वकी जिज्ञासाजागने से शिष्य पुनः पुनः इस बात की ही जिज्ञासा करें। जिज्ञासा स्थल- एकमात्र श्रीगुरुपादपद्म ही जिज्ञासा स्थल हैं। श्रीगुरुदेव भी परम साधन पुरुषार्थादि विषय में विचार निपुण होना परम आवश्यक है। श्रीभागवत में अनुरक्त रसिक जन सङ्गपरायण अतएव प्रसन्न उज्ज्वल चित्त होंगे, जीवातु स्वरूप श्रीगोविन्द के पादपद्म सुधा का आस्वादक श्रीचैतन्यचन्द्र के चरण पद्म के मधुकर एवं श्रीराधापदनख-चन्द्र- चकोर होंगे। एवम्विध श्रीश्री गौर-गोविन्द-भजन निपुण श्रीगुरुदेव के समीप में श्रीकृष्ण लीलारहस्य ही ज्ञातव्य हैं।

यह लीला रहस्य शब्दसे स्वकीया परकीया भेदसे लीला का द्वैविध्य एवं गोपीगण के विषय में परकीया भावादि, अन्यकुछ (स्वकीयादि) नहीं, यह ही ज्ञातव्य है, किस प्रकार से शिक्षणीय है, उसका प्रकार कहते हैं-अन्वय एव व्यतिरेक से जानना होगा। अन्वय

शब्द से आनुगत्य अर्थात् निरन्तर सेवाएवं व्यतिरेक शब्द से औत्कण्ठ्य अर्थात् परमार्त्ति ही ध्वनित है।

सुतरां परमार्त्ति भरसे श्रीगुरुपाद पद्म की नित्य आनुगत्यमूलक सेवा के द्वारा ही श्रीकृष्ण लीला रहस्य ज्ञातव्य है, कारण श्रीगुरु चरणानुगत्य ही सर्वत्र सर्वभजन साधन में सर्वदा अर्थात् सर्वकाल में जीवन मरण में विपद-सम्पदमें दूर निकटमें प्रभात्-प्रदोषमें सङ्कीर्त्तनारम्भ में महाप्रसादसेवन में एक वाक्य से जीवन के प्रतिपद क्षेपमें प्रति मुहूर्त्त में ही अनुशीलनीय कार्य में अत्यावश्यक धर्म हैं, इस विषयमें श्रीमद्भागवतादि वह शास्त्र का प्रमाण एकरूप हैं, श्रीगुरुदेव के प्रसन्न होना एकान्त आवश्यक हैं,। श्रीगुरुरूप आत्मा परम बान्धव एवं देवता परमाराध्य इष्ट वस्तु के निकट से ही भागवत धर्म शिक्षण एकान्त आवश्यक हैं, अधिक कथन निष्प्रयोजन हैं।

श्रीगुरु ही परात्पर तत्त्व हैं।



चतुःश्लोकी का अनुवाद समाप्त।









श्रीहरिदासशास्त्री
सम्पादिता ग्रन्थावली

१। वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्"
२। श्रीनृसिंह चतुर्दशी, ३। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका
४। श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति
५। श्रीराधाकृष्णार्चन द्वीपिका
६-७-८। श्रीगोविन्दलीलामृतम्
९। ऐश्वर्यकादम्बिनी, १०। संकल्पकल्पद्रुम
११। चतुःश्लोकी भाष्यम् १२। श्रीकृष्णभजनामृत
१३। श्रीप्रेमसम्पुट, १४। भगवद्भक्तिसार समुच्चय
१५। व्रजरीतिचिन्तामणि,
१६। श्रीगोविन्दवृन्दावनम्
१७-१८। श्रीराधारससुधानिधि (मूल, सानुवाद)
१९। श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश,
२०। हरिभक्तिसारसंग्रह
२१। श्रुतिस्तुति व्याख्या, २२। श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र
२३। धर्मसंग्रह, २४। श्रीचैतन्य सूक्तिसुधाकर
२५। सनत्कुमार संहिता, २६। श्रीनामामृतसमुद्र
२७। रासप्रबन्ध, २८। दिनचन्द्रिका
२९। श्रीसाधनदीपिका, ३०। चैतन्यचन्द्रामृतम्
३१। स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वप्रतिपादन,
३२। श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः, ३३। श्रीब्रह्मसंहिता
३४। प्रमेयरत्नावली, ३५। नवरत्न
३६। भक्तिचन्द्रिका, ३७। वेदान्तस्यमन्तक
३८। श्रीभक्तिरसामृतशेषः, ३९। दशश्लोकी भाष्यम्
४०। गायत्री व्याख्याविवृतिः, ४१। श्रीचैतन्यभागवत
४२। श्रीचैतन्य मङ्गल

४३ ।श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्
४४ । तत्त्वसन्दर्भः, ४५ । भगवत्सन्दर्भः
४६ । परमात्मसन्दर्भः, ४७ । कृष्णसन्दर्भः
४८ । श्रीगौराङ्गविरुदावली । ४९ । सत्सङ्गमः ।
५० ।श्रीचैतन्यचरितामृतम् ।
५१ । नित्यकृत्यप्रकरणम्

वङ्गाक्षरे मुद्रित.

५२ । श्रीबलभद्र-सहस्रनामस्तोत्रम् ५३ । दुर्लभसार
५४ । साधकोल्लासः ५५ । भक्तिचन्द्रिका
५६-५७ । श्रीराधारससुधानिधि (मूल, सानुवाद)
५८ । भगवद्भक्तिसार समुच्चय ५९ । भक्तिसर्वस्व
६० । मनःशिक्षा ६१ । पदावली
६२ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका

प्रकाशनरत ग्रन्थरत्न—

१ । श्रीहरिभक्तिविलासः ।
२ । श्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्, ३ । भक्तिसन्दर्भः,
४ । प्रीतिसन्दर्भः ५ । श्रीचैतन्यचरितामृत
(श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत)
६ । अलङ्कार-कौस्तुभ (प्रभृति)